ओ३म्

हिन्दू शतकम्

हिन्दू कौन है और हिन्दू धर्म क्या है
मूल वैदिक–सनातन सिद्धांतों का विवेचन

ऑग्ल भाषा मूल लेखक
दीनबन्धु चन्दोरा

हिन्दी अनुवादक मण्डल
डॉ॰ नरेश चन्द्र वाचस्पति,
बद्रीप्रसाद आर्य
वीरेन्द्र सिंह

गोविन्दराम हासानन्द

श्री आदित्य चन्दोरा

मार्च 18, 1969 - सितम्बर 5, 2002

समर्पण

इस पुस्तक की नींव रखनेवाले स्व॰ आदित्य चन्दोरा के प्रेरणादायी एवं परोपकारी जीवन को यह कृति समर्पित है। **'चरैवेति चरैवेति'**– **'निरन्तर कर्म करते रहो'** के सन्देश को जीवन में चरितार्थ करनेवाले स्वनामधन्य स्वर्गीय आदित्य चन्दोरा, अपनी पाँचवीं सिनेमा-फिल्म की एडिटिंग करने हेतु न्यूयार्क से भारत के आधुनिकतम टेक्नॉलोजी वाले हैदराबाद-स्थित रमण नायडू स्टुडियो गए थे। कुछ समय निकालकर वहाँ से पितामह से मिलने जोधपुर चले गए। जोधपुर में मोटर साइकिल से आकस्मिक दुर्घटना के कारण बेहोश होने पर, एयर ऐम्बुलेन्स द्वारा तुरंत दिल्ली ले-जाए गए। दिल्ली के 'अपोलो अस्पताल' में अपने हृदय, यकृत, चक्षु, गुर्दे इत्यादि अंगों का दान कर, तैंतीस वर्ष की अल्प आयु में अपने प्राणों की दिव्य ज्योति से अनेक परिवार-जनों में जीवन-ज्योति ज्वलंत कर, उन्होंने 5 सितम्बर 2002 को परम गति प्राप्त की।

यह रचना सुपुत्र स्व॰ आदित्य चन्दोरा के स्वार्थहीन सामाजिक कार्यों की एक झलक है।

सुपुत्र के वियोग से माता सावित्री, बहन मुक्ता, भाई आलोक, पिता दीनबन्धु तथा समस्त चन्दोरा-परिवार के अति कष्टमय शोकातुर जीवन होने के उपरांत भी इस पुस्तक के हिन्दी-अनुवाद को पुनः संशोधित कर आपको प्रस्तुत कर रहे हैं, ताकि हिन्दू धर्म के शुद्ध स्वरूप का सुगमता से बोध हो सके। इस कृति में सबसे अधिक योगदान माता सावित्री का रहा है, जिन्होंने दुःखमय जीवन को झेलते हुए पुस्तक पूर्ण करने में अमूल्य सहायता की है।

यह रचना उन सभी धर्मप्रेमी महानुभावों को समर्पित है जो वेदों में निहित सत्य को हृदयंगम कर, मानव-कल्याण हेतु, आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार करने को इच्छुक हैं।

दीनबन्धु चन्दोरा, एम॰डी॰, मार्च 18, 2005

आभार प्रदर्शन

डॉ॰ शशि तिवारी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; डॉ॰ रवि प्रकाश आर्य, दिल्ली; बार्बरा जोन्स ग्लेज, डॉ॰ ऑफ एजुकेशन, डाल्टन; मुक्ता, आलोक तथा सावित्री चन्दोरा; डॉ॰ विजय अरोड़ा तथा डॉ॰ ओम अरोड़ा, प्रो॰ भूदेव शर्मा, क्लार्क विश्वविद्यालय; डॉ॰ मधुसूदन चन्दोरा, एटलांटा, जार्जिया; प्रो॰ राजेन्द्र सिंह, क्लेमसन विश्वविद्यालय, साउथ केरोलिना, अमेरिका; श्री अमर ऐरी, टोरंटो, कनाडा; भारत-स्थित रामकृष्णन् मिशन, केरल के संन्यासी, स्वामी ज्योतिर्मयानंद, प्रसिद्ध पुस्तक *'विवेकानंद ए कॉम्प्रीहैन्सिव स्टडी'* के लेखक, तथा श्री रोमेश वडेरा, राजस्थान, भारत; डॉ॰ हरीश्चन्द्र, हैदराबाद, भारत—इन सभी के प्रति मैं उनके अमूल्य योगदान के लिए आभारी हूँ।

श्री चरणजीत सिंह, राष्ट्रीय सिख संगत, भारत और श्री शमशेर सिंह पुरी, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰ द्वारा गुरु गोविन्दसिंह जी के उपयुक्त संदर्भ प्राप्त कराने, श्री विजय पराशर द्वारा बाली मन्दिर का पुन: चित्रण-कार्य करने, श्री श्याम तिवारी का इंटरनेट एक्सप्लोरर द्वारा नवीनतम आनुसंधानिक आंकड़े प्राप्त कराने के लिए धन्यवाद। डॉ॰ शजीहा मुहान्ना ने प्रो॰ अलबटल, अरेबिक स्टडीज, एमरी यूनीवर्सिटी, एटलांटा, जार्जिया, अमेरिका, द्वारा अनूदित दुर्लभ अरबी पुस्तक *'निसान अल अरब'* को उपलब्ध करवाने में विशेष योगदान किया। मैं वास्तव में डॉ॰ मुहान्ना के 'हिन्दू' शब्द के अरबी अर्थ के मूल को ज्ञात करने के लिए किए गए गहन प्रयासों के प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ। जून 1999 में अपनी एटलांटा-यात्रा के दौरान विश्वदीप माधव आश्रम, जाडन, राजस्थान, भारत के अस्सी-वर्षीय

श्री माधवानंद ने राजा भर्तृहरि की वंशगाथा की पुनर्व्याख्या की, इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय पथिक, श्री वसुवज, जिनके जीवन का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार में संस्कृत-ज्ञान का प्रचार-प्रचार करना है, एटलांटा पधारे थे तथा वैदिक धर्म के विषय में बहुत आवश्यक और प्रामाणिक सन्दर्भ स्रोत प्रदान किए। श्री वी॰डी॰ कोटिके, डॉ॰ मिहिर लाल तथा श्री विश्रुत आर्य की सहायता के लिए मैं इनका आभारी हूँ तथा जिनका भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष इस कृति को परिणाम तक पहुँचाने में सहयोग रहा है, उन सबके प्रति कृतज्ञ हूँ।

मैं सभी स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के प्रति उनके सम्पादकीय और परीक्षण द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण सुझावों की प्रशंसा करता हूँ। श्रीमती लेसलि खन्ना और श्री विनोद शर्मा एटलांटा, जार्जिया, अमेरिका, तथा जोधपुर, राजस्थान के श्री मोहन लाल शर्मा को उनके कला-कार्य और श्री धीरूशाह को उनके सम्पादकीय योगदान के लिए विशेष धन्यवाद देना चाहूँगा। मैं श्री '*अजय कुमार, विजय कुमार गोविन्दराम हासानंद, प्रकाशक*', 4408 नई सड़क, दिल्ली, भारत के प्रति '*हिन्दू शतकम्*' के प्रकाशन के लिए विशेष कृतज्ञ हूँ।

हिन्दू धर्म के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए पाठक इस पुस्तक के अन्त में दी गई स्रोत-सूची की सहायता ले सकते हैं। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस रचना द्वारा लोगों को धर्म के वास्तविक स्वरूप एवं अर्थ की जानकारी मिले जिससे उग्रवाद से सन्तप्त इस विश्व में सुख, समृद्धि, शांति व समरसता और मानवता का कल्याण हो सके।

सहायक हिन्दी अनुवादकगण डॉ॰ नरेश चन्द्र वाचस्पति, बद्री प्रसाद आर्य तथा वीरेन्द्र सिंह; हिन्दी सम्पादकीय परामर्शदाता श्री सत्यानन्द शास्त्री, न्यूयार्क; पंडित सत्यप्रकाश बीगू, मॉरिशस; तथा डॉ॰ महेन्द्र पाल शेखावत, पिलानी, राजस्थान; डॉ॰ रवि प्रकाश

आर्य, दिल्ली; डॉ॰ शशि तिवारी, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली; श्री वागीश आचार्य, श्री रूपचन्द दीपक तथा डॉ॰ सुशीला कमलेश, डॉ॰ हरीश्चन्द्र, हैदराबाद, भारत के अथक परिश्रम के कारण ही मूल अंग्रेजी भाषा का यह शुद्ध रूपान्तरण, पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा सका। श्रीमती कुसुम लता शर्मा, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰ के परोपकार-भाव से किए गए पारखीय प्रयास के लिए परमात्मा उन्हें स्वस्थ तथा समृद्ध करे। इन सभी के अनोखे सहयोग और समर्पण-भाव के लिए मैं अपने अन्त:करण से कृतज्ञ हूँ।

मार्च 18, 2005 **दीनबन्धु चन्दोरा, एम॰डी॰**

प्राक्कथन

धर्म शब्द का अर्थ बहुत गहन है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ का अपना एक स्वाभाविक धर्म होता है। मनुष्यों को अपने स्वाभाविक दायित्वों व कर्तव्यों का बोध करानेवाला धर्म ही है। सभी मनुष्यों का समाज के प्रति एवं स्वयं के प्रति एक विशेष दायित्व है--यही मानव-धर्म है। स्वाभाविक मानवधर्म का बोध केवल हिन्दू धर्म ही करा सकता है। मनुष्य को अपने स्वाभाविक दायित्वों को समझने के लिए प्रयास अथवा पुरुषार्थ की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक सिद्धान्तों अथवा धर्म की जानकारी प्राप्त हो—इस उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने में यह रचना बहुत उपयोगी होगी। जो व्यक्ति, अभिभावक, संस्था अथवा विभिन्न समूह, हिन्दू दर्शन, परम्पराओं और मान्यताओं को सही रूप से समझना चाहते हैं, उनके लिए यह कृति बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रो॰ भूदेव शर्मा

अध्यक्ष, वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर वैदिक स्टडीज;

अध्यक्ष, हिन्दू एजुकेशनल एण्ड रिलिजिअस सोसायटी ऑफ अमेरिका:

प्रो॰ गणित विभाग क्लर्क यूनिवर्सिटी, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰।

पुरोवाक्

हिन्दू-शतकम् को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। मुझे यह लिखते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है कि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की यथार्थ व्याख्या करनेवाला लघुकाय प्रामाणिक कोष है। यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म के विषय में गवेषणा का नया भाव उत्पन्न कर देता है। ग्रन्थ में दिए गए उदाहरण, आर्ष प्रमाण एवं उद्धरण इसकी प्रामाणिकता को बढ़ा देते हैं। इस ग्रन्थ में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्धित मौलिक पहलुओं की समीचीन व्याख्या की गई है। पाठकवृन्द 'हिन्दू शतकम्' को पढ़कर लाभान्वित ही नहीं अपितु महान् हिन्दू संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर अपने-आपको गौरवान्वित अनुभव करेगा। धर्म की परिभाषा से लेकर हिन्दू धर्म के परिप्रेक्ष्य में धर्म के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालनेवाली यह पुस्तक अपने-आप में अद्भुत कृति है। प्रत्येक हिन्दू धर्मावलम्बी तथा हिन्दू धर्म में जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति को 'हिन्दू-शतकम्' को अपने निजी पुस्तकालय का अंग बनाना चाहिए।

डॉ॰ रविप्रकाश आर्य

प्रधान सम्पादक : इण्डियन फाउँडेशन फॉर वैदिक साइँस

दिल्ली, भारत।

vedicscience@rediffmail.com

www.vedascience.com

यथार्थ कथन

हिन्दू धर्म अत्यन्त प्राचीन है। इसे शाश्वत रूप का वरदान मिला है। **'न ममार न जीर्यति'**–'यह न कभी मरता है और न ही जीर्ण-शीर्ण होता है'। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे-ज़माँ हमारा।' यह आत्मानुभूति इसके लम्बे संघर्षमय अतीत की याद दिलाती है।

हिन्दू धर्म **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का पाठ पढ़ाता है; प्रातः-सायं **'भद्रं वद.....पुण्यं वद'**–प्रभु से भद्र भावनाओं और पुण्य प्रेरणाओं की याचना का जाप करता है; पर्यावरण की रक्षार्थ 'शांतिः शांतिः शांतिः' का पक्षपाती है; प्राणिमात्र को अहिंसा का उपदेश देता है; मानव मात्र को सहिष्णु होने की प्रेरणा देता है; समता, समरसता, सर्वमंगल-कारिणी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए ही 'हिन्दू-शतकम्' की रचना की गई है।

'हिन्दू-शतकम्' सशक्त, सर्वशंकानिवारण करनेवाली उत्कृष्ट रचना है। मैं डॉ॰ दीनबन्धु चन्दोरा को इस सराहनीय प्रयत्न के लिए भूरि-भूरि साधुवाद कहता हूँ।

सत्यानन्द शास्त्री,

न्यू हायड पार्क, न्यूयार्क 11040,

मार्च 2004 यू॰एस॰ए॰,

प्रस्तावना

'हिन्दू-शतकम्' हिन्दू धर्म पर सौ मूलभूत प्रश्नों के विषय में है। जो शिक्षित व्यक्ति हिन्दू धर्म पर वर्तमान में प्रासंगिक सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए इसमें सारगर्भित और प्रामाणिक उत्तर दिए गए हैं। इस कृति में हिन्दू धर्म के वास्तविक सिद्धान्त, धारणाएँ, आधारभूत और अन्य सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध हैं। प्रश्न सरल और संक्षिप्त हैं तथा उत्तर भी उतने ही प्रभावी और स्पष्ट हैं। लेखक ने ग्रन्थ-निर्माण में सुविस्तृत तथा गहन अध्ययन एवं मनन-मन्थन किया है—यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

'हिन्दू-शतकम्' में मूलभूत धार्मिक ग्रन्थों, अन्य सहायक धार्मिक ग्रन्थों, समालोचन-ग्रन्थों, वेदांगों, दर्शनों और उपनिषदों के बारे में बताया गया है। लेखक स्मृति, नीति-शास्त्र, ऐतिहासिक महाकाव्य और हिन्दू धर्म में दी गई पराभौतिक धारणाओं पर व्याख्या प्रस्तुत करता है। पृथिवी की आयु और पुरातन इतिहास पर उपलब्ध कराए गए आंकड़े तथ्यपरक हैं।

रोमेश वडेरा,
अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाविद्,
चितौड़गढ़, राजस्थान, भारत

भूमिका : अध्ययन-निर्देश

शतकम् एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है एक सौ। संस्कृत सभी आधुनिक इण्डो-यूरोपियन भाषाओं की जननी है। अंग्रेजी और लैटिन भाषा का उद्भव संस्कृत से हुआ है। सभी वैदिक सनातन हिन्दू धर्म-ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही हैं।

वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट एवं प्रामाणिक बनाने के लिए मूल धार्मिक संस्कृत-ग्रन्थों के उद्धरण देकर उनका सरल अर्थ भी साथ में दिया गया है। इसके लिए लेखक और सम्पादक-मण्डल ने विशेष प्रयास किया है।

लेखक निष्ठापूर्वक आशा करता है कि पाठक इस पुस्तक को खुले दिमाग से पढ़ेंगे। यह पुस्तक विशेष रूप से हिन्दू धर्म के विषय में सभी संशयों को दूर करने के लिए लिखी गई है।

पाठकों को चाहिए कि वे प्रश्न-1 से आरम्भ कर क्रमशः 100 तक पढ़ें। इससे वैदिक हिन्दू-सनातन धर्म के सिद्धान्तों को मूलभूत विशुद्ध रूप में समझने में सरलता होगी।

धन्यवाद,

सम्पादक मण्डल

विषय-सूची

अध्याय 1 :	एक सौ प्रश्न	21
	धर्म	21
	रिलिज़न	23
	हिन्दू	24
	वेद	28
	श्रुति	30
	संकल्प	36
	कालक्रम	38
	राम-रावण युद्ध का समय	54
	श्री हनुमान कौन थे	55
	महाभारत-युद्ध और कलियुग	58
	आर्य	59
	स्वस्ति	62
	गायत्री मन्त्र	66
	यज्ञ और होम	66
	अश्वमेध यज्ञ	70
	संस्कार	73
	यज्ञोपवीत	75
	आश्रम	82
	वर्ण	84
	'वाद' क्या है	90
	संगठित धर्म	92

'मत' 'मजहब' और 'धर्म' 99
जीवन का उद्देश्य 100
आचरण 101
मानव-सिद्धान्त 109
यज्ञ और दैनिक जीवन 110
नीति शास्त्र 114
मत-मजहब और धर्म ग्रन्थों का
तुलनात्मक अध्ययन 116
पौष्टिकता 117
महापुरुष 119
उत्सव 120
स्वर्ग और नरक 127
पुनर्जन्म, पुरुषार्थ 128
कर्म 130
योग 130
प्राणायाम 136
ध्यान 138
ईश्वर/भगवान् 143
देव/देवता 147
ईश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्' 148
प्रकृति 151
ज्ञान 152
ईश्वर-प्राप्ति 156
'वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म' के
आवश्यक अंग 162
'हिन्दू' कौन है? 164
'वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म'
का विश्व को योगदान 168

अध्याय 2 :	दैनिक पारिवारिक प्रार्थनाएँ	172
अध्याय 3 :	मानव-संस्कृति की आधारमूल संहिता : मनुस्मृति	182
अध्याय 4 :	सम्राट विक्रमादित्य व भर्तृहरि : 'ज्ञानी बनाम अज्ञानी'	185
अध्याय 5 :	महान् नीतिज्ञ विदुर एवं ज्ञानी की परिभाषा	190
अध्याय 6 :	हिन्दू संस्कृति के महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक ग्रन्थ	192
अध्याय 7 :	विकृत कालक्रम	200
अध्याय 8 :	झलकियाँ वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म की	214
अध्याय 9 :	पृथिवी की आयु	229
अध्याय 10:	पुरातन इतिहास क्रमांक	230
अध्याय 11:	प्राचीन युग के कालों की तुलना तथा भारत से प्राचीन वैदिक लोगों का विदेश-गमन	236
अध्याय 12:	संदर्भ ग्रन्थ प्रदर्शिका : स्रोत-सूची	244
अध्याय 13:	शब्द-सूची	248
परिशिष्ट :	1. लेखक का परिचय	252
	2. निवेदन - समालोचना	255

1

हिन्दू धर्म सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी
एक सौ प्रश्न और उत्तर

प्रश्न–1. धर्म क्या है ?

उत्तर : माता-पिता, कुटुम्ब तथा सम्पूर्ण मानवता के प्रति स्वयं का स्वाभाविक तथा स्वार्थ-हीन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व धर्म कहलाता है। **प्राचीन संस्कृत शब्द 'धर्म' का अंग्रेजी भाषा में कोई शुद्ध अनुवाद नहीं है, जो 'धर्म' के अर्थ को पूर्णतः प्रकट कर सके।** धर्म का स्रोत ईश्वरीय है जो कि प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। 'धर्म' का आध्यात्मिक और दार्शनिक अर्थ निम्न प्रकार से महाभारत में है :

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

—महाभारत 12-31-9

'धारण करना ही धर्म है। धर्म से प्रजा टिकी रहती है। जो धारण से युक्त है, वह धर्म है। धर्म वह है जो सभी प्राणियों, परिवार, समाज, राष्ट्र, प्रकृति और ब्रह्माण्ड को सजीव, सुरक्षित और समायोजित करता है।'

मैंने इण्डोनेशिया-भ्रमण के समय इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता में बहुत-से अंग्रेजी विज्ञापन-बोर्डों पर 'धर्मो वनिता' लिखा देखा। उत्सुकतावश मैंने टैक्सी-चालक से इसका अर्थ पूछा। टैक्सी-चालक ने उत्तर दिया—"धर्म का अर्थ है दूसरों की मदद करना और वनिता का अर्थ है—'औरत'। यह केवल सरकारी विभाग के विज्ञापन का एक साइन-बोर्ड है जो कि महिलाओं की सहायता

करता है, इसे आप महिला-कल्याण भी कह सकते हैं।" मैंने उससे पूछा—"आपका क्या धर्म है?" उसने उत्तर दिया "मुस्लिम।" इस इण्डोनेशियन मुस्लिम टैक्सी-चालक के अनुसार उसका निजी धर्म 'मुस्लिम' है, लेकिन उसके लिए धर्म शब्द का अर्थ है—'वह कर्तव्य जिसके द्वारा दूसरों की सहायता होती है।'

व्यक्तिगत तौर पर जो दूसरों की निःस्वार्थ सेवा करता है, उसे धर्म-कार्य समझा जाता है।

कणाद ऋषि ने वैशेषिक दर्शन में धर्म का वर्णन निम्न प्रकार से किया है :

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः॥ वैशेषिक दर्शन 1.2

'धर्म वह उत्तम व्यवहार है, जिससे सार्वभौम अर्थात् भौतिक, सामाजिक, और आत्मिक उन्नति के साथ-साथ यश एवं सफलता की प्राप्ति हो।'

धर्म शब्द संस्कृत धातु धृ से बना है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। उदाहरणार्थ सूर्य का धर्म प्रकाश देना है। पृथिवी का धर्म सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना है। इसी तरह जो कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त कहे गए नैसर्गिक कर्तव्यों को दैनिक जीवन में निभाता है तो यह कह सकते हैं कि उसने 'धर्म'-कार्य आरम्भ कर दिया है, जैसे—'पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति का धर्म दूसरों को सही मार्ग-निर्देशन करना है।'

मनु ने धर्म के 10 लक्षण इस प्रकार बताए हैं :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनु 6-92

'**धृति**—धैर्य रखना, **क्षमा**—माफ करना, **दम**—मन को काबू में करना, **अस्तेय**—छल-कपट, विश्वासघात अथवा चोरी से पर-वस्तु प्राप्त न करना, **शौच**—शरीर एवं मन को साफ रखना अथवा बाह्य एवं आंतरिक स्वच्छता अर्थात् पवित्रता बनाए रखना, **इन्द्रिय-निग्रह**—भावुकता अथवा अनैतिक कार्यों से दूर रहकर इन्द्रियों

को अनुशासन में रखना, **धीः**—सत्यवादी विद्वानों एवं उत्तम पुरुषों के संग से बुद्धि बढ़ाना, **विद्या**—यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना, **सत्य**—वाणी, कर्म, मन और आचार से सच्चा उचित आचरण करना, **अक्रोध**—सबसे शान्त, स्नेह और प्रेम से व्यवहार करना। जो व्यक्ति उपर्युक्त 10 गुणों को धारण करता है, वह धार्मिक है।

दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्दसिंह जी ने उग्रदन्ती छके छन्द-वाणी वर्णन के अन्तर्गत 'चांदी की वार' में कहा है :

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जगे धर्म हिन्दू सकल भांड भाजे।

छके छंद 39

पूरे विश्व में हिन्दू धर्म के उत्थान, जागरण के लिए ख़ालसा पंथ, अथवा सत्य धर्म का आचरण सर्वव्यापक हो, ताकि पाखण्ड, अंधविश्वास, अन्याय, अज्ञान को दूर किया जा सके। गुरु गोविन्द सिंह ने आगे सवैया छके छंद 40 में कहा :

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जागे धर्म हिन्दुका तुर्क डन्डे भाजे।

उग्रदंती सवैया छके छंद 1, पंक्ति 40

उपर्युक्त छंद में 'हिन्दुका' शब्द प्रवचन में था, उससे पता चलता है कि उस समाज में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग होता था।

निष्कर्ष—*प्राकृतिक सिद्धांतों को जीवन में अपनाकर उत्तम जीवन-यापन करना ही धर्म है।*

प्रश्न-2. रिलिजन क्या है ?

उत्तर : विभिन्न समुदायों ने अपने विचारों एवं सुविधा हेतु 'मत-मतान्तर' अर्थात् 'रिलिजन' का निर्माण किया और अपनाया। 'धर्म' शब्द अंग्रेजी भाषा में नहीं है। अगर 'धर्म' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद करने की कोशिश करें तो उसके समानान्तर अंग्रेजी का शब्द केवल 'रिलिजन' ही मिल पाता है। 'रिलिजन' को साधारण तौर पर 'मजहब' भी कह सकते हैं। 'रिलिजन' व्यक्ति

को केवल एक प्रकार का जीवन जीने का निर्देश देता है। कोई भी व्यक्ति उस रास्ते से अलग होने का साहस कभी भी नहीं कर सकता। उसे डराने-धमकाने हेतु 'रिलिजन' में मनघड़न्त भयंकर सजाएँ लिखी हैं, जिनसे डरकर कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र विचार-धारा से कभी भी सोच नहीं सकता।

मनुष्यों ने अपनी सुविधानुसार 'मत-मतांतरों' अर्थात् 'रिलिजन' और 'मजहब' को बनाया, जबकि 'धर्म' शब्द प्राकृतिक सिद्धान्तों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को प्रकट करता है, और मनुष्यों को स्वतंत्र सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सर्वहितकारिणी विचारधारा प्रदान करता है।

प्रश्न-3. 'हिन्दू' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर : यथार्थ में 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति आज भी अज्ञात है। 'हिन्दू' शब्द हिन्दुओं के किसी भी प्राचीन धर्म-ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। 'हिन्दू' शब्द पर अनेक टिप्पणियाँ निम्न प्रकार से हैं :

1. विद्वानों का कहना है कि हिन्दू शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्दों से उत्पन्न हुआ है। पहला शब्द है 'हिमालय' और दूसरा शब्द है 'सिन्धु'। हिमालय विश्व की सर्वाधिक 5.5 मील ऊँची और 15,000 मील लम्बी पर्वत-शृंखला है। यह भारत के उत्तर-पूर्वी, उत्तरी तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की सीमा निश्चित करती है। 'सिन्धु' का अर्थ समुद्र है और समुद्र भारत की अधिकतर दक्षिणी सीमा की तरफ संकेत करता है। हिमालय शब्द से 'हि' और 'सिन्धु' शब्द से 'इन्दू' के मिश्रण से एक नये शब्द 'हिन्दू' का जन्म हुआ है। हिमालय से लेकर भारतीय महासागर अथवा हिन्द महासागर तक फैले क्षेत्र में रहनेवाले लोग 'हिन्दू' कहलाए, इस प्रकार से 'हिन्दू' शब्द स्वदेशी ढंग से उत्पन्न हुआ है।

2. अन्य विद्वानों के अनुसार 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति सिन्धु शब्द से हुई है। उनके अनुसार 'हिन्दू' शब्द सिन्धु का अपभ्रंश

है। सिन्धु प्राचीन भारत की सबसे लम्बी नदी का भी नाम है, जो हिमालय से आरम्भ होकर भारत के पश्चिमी सागर तक बहती है। प्राचीन काल में हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला, हिमालय की पर्वत-शृंखला तथा बृहद् भारत की पश्चिमी सीमाओं से परे अन्य देशों को जाने के लिए सिन्धु नदी को पार करना होता था। यात्रियों को प्रायः अति आनन्द अथवा महान् कष्टदायक रुकावटें याद रहती हैं। चूँकि हिन्दूकुश पर्वतों की शृंखला, भारत की पश्चिमी दिशा से बाहर जानेवाले यात्रियों के लिए एक विशेष अड़चन थी, अतः उन्हें हिन्दूकुश पर्वत से 'हिन्दू' शब्द अच्छी तरह याद रहने लगा। पश्चिम के देशों में सिन्धु अथवा इन्दु घाटी के 'हिन्दू' लोग व्यापार, आनन्द और समृद्धि के लिए जाने जाते रहे। मुख्यतः पश्चिम के देश पर्सिया (फारस), ग्रीस (यूनान), मध्य एशिया अथवा यूरोप थे जहाँ सिन्धु नदी और हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के लोगों को यात्री अपनी भाषा के अनुसार हिन्द, इन्द, इन्तू अथवा इन्दू आदि शब्दों से सम्बोधित करते रहे।

अतः हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के निवासियों तथा सिन्धु घाटी के लोगों को विदेशी यात्री 'हिन्दू' नाम से पुकारने लगे। इसी प्रकार यूरोप और एशिया के मध्य स्थित कॉकेसस (Caucasus) पर्वत-शृंखला के लोगों को कॉकेसियन (Caucasian) कहने लगे। 'कॉकेसियन' शब्द कालान्तर में श्वेत लोगों के लिए प्रयोग होने लगा।

3. 'हिन्दू' शब्द 800 ई० के आरम्भ में प्रकाशित अरब लोगों का पवित्र शब्दकोष- पुस्तक **'लिसान अल अरब'** में 'हिन्दुका' के नाम से है, जहाँ 'हिंदुका' का अर्थ है भारत के लोग।

अक्षर-विज्ञान के अनुसार अगर अन्य भाषाओं के शब्दों की उत्पत्ति पर खोज की जाए तो यह सिद्ध होता है कि वैदिक संस्कृत विश्व की सभी भाषाओं जैसे आर्ष, हेमिटिक, सेमिटिक, और तुरानी भाषाओं की जननी है। आर्ष भाषा में वैदिक संस्कृत के पश्चात्

दूसरा स्थान जन्दावस्था—पारसियों के प्राचीन साहित्य का आता है। जन्द भाषा और आधुनिक फारसी, वैदिक संस्कृत की ही एक अपभ्रंश शाखा है। अनेक स्थानों पर संस्कृत का 'स' जन्द और आधुनिक फारसी में 'ह' हो गया है, उदाहरणतया :

संस्कृत भाषा	जन्द भाषा/आधुनिक फारसी
असुर	अहुर
सोम	होम
सप्त	हप्त
सेना	हेना

संस्कृत भाषा	हेमिटिक भाषा/प्राचीन मिश्र की भाषा
श्वेत	हूत (संस्कृत भाषा में 'व' के स्थान पर 'उ' होने को सम्प्रसारण कहा जाता है)

संस्कृत भाषा	सेमिटिक भाषा/अरबी भाषा
सुर	हूर
सिंह	हैसिम
सरकत (सृ)	हरकत

संस्कृत भाषा	यूनानी भाषा/ग्रीक भाषा	English meaning
सप्त	हप्त hepta	seven
सामि (अर्ध)	hemi	half
सशूर	heros	hero
षष्ट (षट्)	hex	six
सुरुकुलेश	Hercules	Hercules

भारत-भू पर पिछली कुछ शताब्दियों में अरबी, फारसी और यूनानी (ग्रीक) लोगों का बहुत प्रभाव रहा है। अत: 'सिन्धु' शब्द

का अपभ्रंश शब्द 'हिन्दू' अथवा 'हिन्दुका' होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

4. दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्दसिंह ने दशम ग्रन्थ में भी 'हिन्दुका' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ हिन्दुओं से है।

5. मध्यकाल में 'हिन्दुका' शब्द का प्रचलन था। ब्रिटिश काल में 'हिन्दू' शब्द 'इन्डो' के नाम से प्रयोग में आया। इस प्रकार ब्रिटिश शब्द 'इन्डो' आधुनिक काल में 'हिन्दू' शब्द के लिए प्रचलित हुआ।

6. 'हिन्दू' शब्द का अर्थ कुछ लोग ऐसा भी लगाते हैं जो 'हि' अर्थात् हिंसा 'न्दु' अथवा जो न करे, अत: हिंसा न करने वाले, सार्वभौम प्रेम से जुड़े शान्तिप्रिय हिंसा-रहित लोग 'हिन्दू' कहलाए।

प्राचीन काल में हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के निवासियों को अरेबियन, परशियन, ग्रीक अथवा यूनानी और विदेशी[1] लोगों ने 'हिन्दुका' अर्थात् 'हिन्दू' कहा। हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला से जुड़े हिमालय पर्वत-माला की भूमि को 'हिन्दुस्तान" अर्थात् 'हिन्दुओं की भूमि' कहा तथा उनके 'धर्म' को 'हिन्दू धर्म' से संबोधित किया।

प्रश्न-4. हिन्दू धर्म की स्थापना किसने की ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की स्थापना किसी एक व्यक्ति, पैगम्बर, गुरु, समुदाय, अथवा समिति ने नहीं की। हिन्दू धर्म का स्रोत वेद है। जैसा कि मनुस्मृति में उल्लिखित है—**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** अर्थात्, मनुष्यमात्र के लिए जो कुछ भी धर्माचरण है, उसका मूल वेदों में है। **धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः** अर्थात्, धर्म के जिज्ञासुओं के लिए परम प्रमाण वेद हैं।

---

1. सर मोनियर विलियम्स कृत 'संस्कृत अंग्रेजी भाषा शब्दकोष' के अनुसार कुश का अर्थ पवित्र घास है, अत: हिन्दूकुश पर्वत से तात्पर्य हुआ—'हिन्दुओं की पवित्र घास का पर्वत'। इससे यह अटूट रूप से सिद्ध होता है कि 'हिन्दुओं' का अतीत में निवास हिन्दूकुश पर्वत पर था।

निष्कर्ष– *हिन्दू धर्म का संस्थापक कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है। अपितु मानवीय सनातन वैदिक (वेदों से उद्भूत) परम्परा ही वास्तविक हिन्दू धर्म है।*

प्रश्न-5. वेद क्या हैं ?

उत्तर : वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। मानव-सभ्यता के आरम्भ में जो दिव्य ज्ञान प्रकट किया गया था उसे 'वेद' कहते हैं। यथार्थ वैदिक ज्ञान 'वैदिक सनातन हिन्दू धर्म' का आधार चार पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार वेद हैं।

ऋग्वेद में कुल मन्त्र-संख्या	:	10,522
यजुर्वेद में कुल मन्त्र-संख्या	:	1,975
सामवेद में कुल मन्त्र-संख्या	:	1,875
अथर्ववेद में कुल मन्त्र-संख्या	:	5,977
चारों वेद की कुल मन्त्र-संख्या	:	20,349

वेद शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु (Verb) से हुई है। 'विद्' धातु के पाँच अर्थ हैं, सभी अर्थों के आधार पर संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 'जिस ज्ञान को सभी लोग, अपने गुणों के आधार पर जान सकते हैं, प्राप्त कर सकते हैं, विचार कर सकते हैं, जी सकते हैं, और व्यवस्थित हो सकते हैं, उसको वेद कहते हैं।'

वेद आधुनिक विश्व के वैज्ञानिक ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं। सौभाग्य की बात यह है कि हिन्दुओं ने 'वेद' को पैतृक सम्पत्ति मानकर, सर्व मानव हित हेतु, एक धरोहर के रूप में सभी मनुष्यों के लिए आज तक सुरक्षित रखा है।

प्रश्न-6. हिन्दू धर्म का मौलिक नाम क्या है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की शिक्षा वेदों पर आधारित है, इसलिए 'हिन्दू धर्म' वैदिक धर्म कहलाता है। आदि शंकराचार्य ने 'विवेक चूड़ामणि' में इसे 'वैदिक धर्म' कहा है :

जन्तूनां नरजन्मदुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरमं विद्वत्त्वमस्मात्परम्।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थितिर्-
मुक्तिर्नो शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते।।2।।

—विवेक चूड़ामणि 2

प्राणियों की योनि में मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, पुरुषत्व से बुद्धिमत्ता प्राप्त करना कठिन है। विद्वत्ता द्वारा **वैदिक धर्म** का अनुसरण करना अत्यधिक कठिन है। आत्म-अनात्म का विवेचन, परमात्मा का साक्षात्कार तथा ब्रह्म में लीन होना, सौ जन्मों में भी करोड़ों पुण्यकर्मों के बिना प्राप्त नहीं हो सकते।

हिन्दू धर्म का मौलिक नाम वैदिक धर्म है। — आदि शंकराचार्य

अधिकतर उपदेशों का उद्गम नैसर्गिक शाश्वत नियमों से होता है। ये शाश्वत नियम आदि से अंत तक विद्यमान रहते हैं। चूँकि सनातन का अर्थ शाश्वत होता है, इसलिए हिन्दू धर्म सनातन धर्म के नाम से जाना जाता है। मनु ने सनातन धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, एक परिभाषा निम्न प्रकार से है:

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

—मनुस्मृति 4-138

अर्थात् सत्य बोलो, वह सत्य बोलो जो प्रिय हो, वह सत्य न बोलो जो अप्रिय हो, वह झूठ न बोलो जो दूसरे को प्रसन्न अथवा चापलूसी करनेवाला हो -यही सनातन धर्म है।

'हिन्दू धर्म' का शुद्ध एवं पूर्ण नाम 'वैदिक सनातन धर्म' है।

प्रश्न-7. सर्वप्रथम वेदों का ज्ञान किसको मिला ?

उत्तर : सृष्टि के आरम्भ में अति-चेतन समाधिस्थ अवस्था-प्राप्त अंतःद्रष्टा ऋषियों, योगियों को वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। अंतःद्रष्टा योगीजनों को अन्तःकरण की चरम जागरूक स्थिति में पहुँचने पर यह ज्ञान उपलब्ध हो सका। पवित्र तथा गुणवान होने

के कारण समाधिस्थ योगियों ने अपने हृदय तथा मन में परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव किया, तब वेदमंत्र उनके हृदय में अवतरित हुए अर्थात् उन्हें वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ। आदि-ऋषियों ने भी वेदमंत्रों की ध्वनि को अपने हृदय में सुना। अतः वेदमंत्रों को श्रुति भी कहते हैं।

वेद अपौरुषेय हैं, जिसका अर्थ है—व्यक्ति द्वारा नहीं बनाए गए। इसी कारण आज तक किसी भी मनुष्य ने वेदों का लेखक होने का दावा नहीं किया, जैसा कि अन्य मत, रिलिजन और मजहबों के विषय में हुआ है। वेद मानव-सभ्यता की सबसे प्राचीनतम दिव्य वाणी हैं।

पारम्परिक मान्यता है कि वेद-ज्ञान अनादि एवं सनातन है।

अति-चेतन समाधिस्थ अवस्था-प्राप्त ऋषियों, योगियों, अर्थात् अंतःद्रष्टाओं को जो दिव्य शब्दार्थ प्राप्त हुए, वही ज्ञान 'वेद' हैं।

प्रश्न-8. पीढ़ी दर पीढ़ी वेदों का प्रवाह कैसे हुआ ?

उत्तर : स्वयं की स्मृति से मन्त्रों का मौखिक रूप से प्रतिदिन उच्चारण करके, वेदों को कंठस्थ करके पीढ़ी दर पीढ़ी उसे सुरक्षित रखा गया। ऋषियों तथा विद्वानों ने मन्त्रों को स्वरों के आरोहावरोह के साथ गाकर याद किया। गाने में प्रत्येक मन्त्र स्वर-शुद्धता के अनुसार था। मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वेदों का प्रचार इस भाँति लगातार चलता रहा।

केवल वैदिक पद्यों को ही 'मन्त्र' कहा जाता है तथा अन्य ग्रन्थों के पद्यों को 'श्लोक' कहा जाता है। मन्त्र वह छंदोबद्ध रचना है, जिसके मनन-चिन्तन करने से अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। मन्त्र के उच्चारण से मन को एकाग्रचित्त करना सरल होता है तथा ईश्वरीय प्रेरणा भी प्राप्त होती है।

वेदों का मौखिक उच्चारण करके, पढ़कर, सुनकर, याद करने से ही अगली पीढ़ी तक वेदों का ज्ञान अक्षरशः पहुँचाया गया। इसलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं। मन्त्र के उच्चारण के आरम्भ

में ओ३म् बोला जाता है, इसका उद्देश्य मन्त्र के अर्थ को समझने के लिए ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त करना है तथा वेदमन्त्र के अपौरुषेयत्व का आभास बनाए रखना है।

प्रश्न-9. उन ऋषियों अथवा पुण्य आत्माओं के नाम बताइए, जिन्हें वेदों का सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त हुआ, तथा इन ऋषियों ने वेदों को लिखित रूप क्यों नहीं दिया ?

उत्तर : अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। चूँकि वेदों को प्रतिदिन उच्चारण कर, सुनकर, स्मरण करके सुरक्षित रखा गया, इसलिए वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है। जब श्रुतियों को गीत के रूप में लिखा गया तब वेदों को 'संहिता' का नाम दिया गया। संहिताओं को आग, बाढ़, पशुओं तथा व्यक्तियों द्वारा नष्ट किया जा सकता है, इसलिए मौखिक रूप से गाने तथा याद करने के आधार पर ही ऋषियों तथा विद्वानों ने वेदों को आज तक सुरक्षित बनाए रखा। वेदमंत्रों के शब्दों को और उनके सही उच्चारण को सुरक्षित रखने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है- वेदों को कण्ठस्थ करना। यह परम्परा आदिकाल से भारत में चली आ रही है और वर्तमान काल में भी कई परिवार वेदों को अक्षुण्ण रखने में संलग्न हैं। अपितु, वेदों के एक अक्षर का भी परिवर्तन न हो जाए, तदर्थ उन्होंने मंत्रपाठ के कई प्रकार बना लिये, यथा- पदपाठ, शिखापाठ, जटापाठ, घनपाठ इत्यादि।

जब वेदों को लिखित रूप में तैयार किया गया तो वेद 'संहिता' कहलाए। श्रुति और संहिता वेद के अन्य नाम हैं।

प्रश्न-10. मूलतः वेद किस भाषा में लिखे गए ?

उत्तर : जब वैदिक-संस्कृत भाषा में 'श्रुति अथवा वेद' को लिखा गया तो 'संहिता' के रूप में 'वेद' पाठकों के सामने प्रस्तुत हुए। वैदिक-संस्कृत भाषा में उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक अक्षर का उच्चारण एक विशेष अर्थ रखता है।

इसी कारण उच्चारण में तनिक भी बदलाव होने से अर्थ बदल जाता है। किसी भी बदलाव को रोकने के लिए प्रत्येक 'अक्षर' का शुद्ध उच्चारण करने की परिपाटी अभी भी सुलभ रूप से विद्यमान है। आधुनिक संस्कृत को अमेरिकन हैरीटेज डिक्शनरी अथवा शब्दकोश के अनुसार इण्डो-यूरोपियन तथा इण्डो-जर्मन भाषा की जननी माना गया है।

भारत की सभी आधुनिक भाषाएँ तथा 'थाई', 'इण्डोनेशियन' इत्यादि पूर्वी-देशों की बहुत सी भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं। जोरो-राष्ट्रियन की धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता' को पुरानी फारसी में लिखा गया था; इसमें ऋग्वेद के मन्त्र भी हैं। जैसे-जैसे समय बीता, वैसे-वैसे अनेक राष्ट्रों का उत्थान एवं पतन हुआ, तब राष्ट्रों की भाषा तथा लिपि भी बदली। इसी तरह वेद भी ब्राह्मी तथा खरोष्ठी जैसी विभिन्न लिपियों में भी लिखे गए। प्राचीन भारत तथा मध्य एशिया में ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियाँ प्रचलन में थीं। इन लिपियों के लुप्त होने के उपरान्त भी 'ओ३म्' तथा 'स्वस्ति' के प्रचलित उपलब्ध चिह्न 'ॐ' तथा '卐' खरोष्ठी लिपि की ही देन हैं।

वेदों की वर्तमान भाषा तथा लिपि 'वैदिक संस्कृत' है।

प्रश्न-11. संस्कृत भाषा की समृद्धि का कोई उदाहरण दीजिए।

उत्तर : भाषाएँ संस्कृति और जन-समुदाय की क्रिया-प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हैं। संस्कृत सभी आधुनिक इण्डो-यूरोपियन भाषाओं की जननी है—यह पश्चिमी देशों के भाषा-विशेषज्ञों ने भी सिद्ध किया है। संस्कृत भाषा में विचारों, संवेगों और सामाजिक क्रियाओं को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द हैं। संस्कृत भाषा में उपसर्ग और प्रत्यय के प्रयोग से असंख्य नए शब्दों का सृजन होता है। संस्कृत-साहित्य में मन के भावों को नौ 'रसों' से प्रदर्शित किया गया है, जैसे वात्सल्य, शृंगार, भक्ति, वैराग्य इत्यादि। पश्चिमी देशों की भाषाएँ 'रस' रूपी भाव से पूर्णतः अनभिज्ञ ही हैं। रॉबर्ट

ए॰ जॉनसन के अनुसार संस्कृत में 'प्रेम' शब्द को व्यक्त करने के लिए 96 शब्द हैं। प्राचीन पर्शियन भाषा पारसी या ईरानी में 80, ग्रीक में 4 और अंग्रेजी में केवल एक शब्द है 'लव'।

आँग्ल भाषा का 'लव' (Love) शब्द संस्कृत में 96 तरह से दर्शाया गया है।

वियतनाम के सुदूर पूर्व दक्षिणी भाग में स्थित नह्-तरांग नगर के निकट वो-चानला गाँव में प्राचीन संस्कृत के शिलालेख मिले, जिनका वर्णन जे॰सी॰ शर्मा द्वारा लिखी पुस्तक 'वियतनाम के हिन्दू मन्दिर, 1998' में किया गया है। संस्कृत में वियतनाम का मौलिक नाम 'चम्पा' है, जैसे थाईलैंड को 'स्याम' नाम से सम्बोधित किया जाता है। सुदूर पूर्वी भाषाएँ विशेषत: इण्डोनेशियाई, वियतनामी और थाई भाषा, संस्कृत शब्दों से इतनी प्रभावित हैं कि मानो उनका उद्भव संस्कृत से हुआ है। जे॰सी॰ शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'वियतनाम के हिन्दू मन्दिर, 1998' में प्राचीन वैदिक सभ्यता का गहरा प्रभाव पढ़ने को मिलता है। नवीं शताब्दी के शिलालेख के अनुसार 'चम्पा' या वियतनामी लोग संस्कृत के महान् विद्वान् भृगु ऋषि के वंशज हैं।

प्रश्न-12. वेदों की शिक्षा पर आधृत क्या और भी धर्मग्रन्थ हैं?

उत्तर : चूँकि वेद प्राचीन गूढ़ वैदिक भाषा में लिखे हैं, इसलिए सामान्य व्यक्तियों द्वारा उनको आसानी से समझना कठिन है। इस कारण से प्राचीन ऋषियों अथवा सिद्ध पुरुषों ने अनेक व्याख्या-ग्रन्थ लिखे हैं; चूँकि ये पुस्तकें वेदों को भलीभाँति समझने में सहायक हैं, इसलिए इनको सहायक ग्रन्थ कहा जाता है।

वेदार्थ जनाने हेतु विभिन्न सहायक धर्म-ग्रन्थ हैं—उपनिषद्, आरण्यक, षड्-दर्शन, मनुस्मृति, ब्राह्मण-ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ आदि।

कुछ अरण्यवासी प्राचीन ऋषियों ने आत्मविषयक, पारलौकिक विज्ञान और दार्शनिक विषयों से सम्बन्धित अंश वेदों से लेकर अधिक विस्तार से अर्थ स्पष्ट करने के लिए पुस्तकें लिखीं, अत:

ये आरण्यक और उपनिषद् के रूप में विख्यात हैं। इनका विषय आध्यात्मिक चिन्तन है। उसी प्रकार से वेदों के कर्मकाण्ड एवं संस्कारों वाले विषयों की व्याख्या ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं सूत्र-ग्रन्थों में की गई है। इन सभी सहायक प्राचीन शास्त्रों का संक्षिप्त विवेचन सातवें अध्याय में 'हिन्दूधर्म की झलकियों' में किया गया है।

कभी-कभी कुछ लोग गलती से उपनिषदों, आरण्यकों और ब्राह्मण-ग्रन्थों को भी वेदों के नाम से उद्धृत करते हैं, किंतु वेद ही सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। सहायक धार्मिक ग्रन्थों की मान्यताएँ यदि वेदों की मान्यताओं के अनुरूप हैं तभी मान्य हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि स्मरण-परम्परा के प्रयोग से ही वेदों के वास्तविक स्वरूप को सुरक्षित रखा गया और 'श्रुति' के नाम से जाना गया, इसी कारण से उनमें कोई प्रक्षिप्त अथवा छद्म रूप से परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु सहायक धर्म-ग्रन्थों के लिए 'स्मरण परम्परा' प्रयोग में नहीं थी, इसलिए उनमें प्रक्षेप अर्थात् मिलावट रूपी परिवर्तन सम्भव था, अतः वेद ही उपलब्ध सर्वमान्य प्रामाणिक मुख्य ग्रन्थ हैं।

वेद ही सर्वमान्य सर्वोच्च प्रामाणिक मूल धर्म-ग्रन्थ हैं।

प्रश्न-13. अगर वेद ही सर्वमान्य सर्वोच्च प्रामाणिक मूल धर्म-ग्रन्थ हैं, तो स्मृति, पुराण, रामायण और महाभारत कौन-सी श्रेणी में आते हैं ?

उत्तर : स्मृति ग्रंथ : समाज को समृद्ध और सुचारु रूप से चलाने हेतु प्राकृतिक नियमों के आधार पर जो संविधान बना, उसे 'स्मृति' कहते हैं। यद्यपि स्मृति-ग्रंथ अनेक हैं, किन्तु उनमें केवल मनु-स्मृति ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। यदि 'वेद' सृष्टि का ज्ञान है तो 'पुराण' सृष्टि का इतिहास है। पुराणों में सृष्टि-उत्पत्ति का इतिहास लाक्षणिक गाथाओं के रूप में सुरक्षित है। पुराणों के पाँच प्रमुख विषय कहे जाते हैं :

1. सृष्टि-उत्पत्ति।

2. प्रलय।

3. सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न मानव तथा उनकी वंश-परम्परा का संरक्षण।

4. मन्वन्तर अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक के समय का लेखा-जोखा, युगों, मन्वन्तरों तथा कल्पों तक सुरक्षित रखना।

5. ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करना।

रामायण और महाभारत भी ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। कुछ लोग इनकी वास्तविकता पर संदेह करते हैं, पर यह उनकी भयंकर भूल है, जैसे कि आगे के अध्यायों से स्वत: ही सिद्ध हो जाएगा। वाल्मीकि रामायण ही मूल मान्य रामायण है। अन्य लेखकों ने इसी रामायण का अनुवाद अनेक भाषाओं में किया, अत: समयानुसार उनमें परिवर्तन भी आए। आरम्भ में श्री तुलसीदास ने रामचरितमानस छ: अध्यायों में लिखी थी, अब वही रामचरितमानस नौ अध्यायों में मिलती है। ऐसा ही महाभारत ग्रंथ के साथ हुआ। सर्वप्रथम महाभारत अष्ट साहस्री अर्थात् 8000 श्लोकों वाला ग्रंथ था। कालान्तर में यह 24000 श्लोकों वाला तथा आज 100000 श्लोकों वाला ग्रंथ बन गया है।

प्रश्न-14. वेदान्त क्या है ?

उत्तर : वेदान्त से अभिप्राय है--वेद का अन्तिम भाग। वेदों में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान के सन्दर्भ में बहुत-से दर्शन-ग्रन्थ हैं। भारतीय दर्शनों में 6 मुख्य दर्शन हैं, जिनको षड्दर्शन कहते हैं। इन दर्शनों की श्रेणी में अन्तिम दर्शन का नाम वेदान्त है, जो ईश्वर अथवा ब्रह्म के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करता है। इन दर्शनों का विवेचन इस पुस्तक के षड्दर्शन वाले भाग में देखा जा सकता है।

आजकल 'वेदान्त' का अर्थ 'अद्वैतवाद' से होने लगा है। अद्वैतवाद की व्याख्या पाँच प्रमुख आचार्यों- शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य, एवं वल्लभाचार्य ने की थी। परन्तु कालांतर

में इन आचार्यों के नाम से अलग-अलग सम्प्रदाय भी प्रचलित हो गए और ये सभी आचार्य वेदान्ती आचार्य कहलाने लगे।

आधुनिक विद्वानों से भी विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं का बोध होता है, जैसे महर्षि दयानन्द सरस्वती ने त्रैतवाद, स्वामी विवेकानन्द ने व्यावहारिक वेदान्त, और योगी अरविन्द ने सर्वांग वेदान्त का बोध कराया।

'वेदान्त दर्शन' वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के विवेच्य विषय-'ईश्वर अथवा ब्रह्मज्ञान' का दार्शनिक विवेचन करता है।

प्रश्न-15. वेदों से कौन-कौन-सी विद्याएँ अथवा विज्ञान की शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं ?

उत्तर : विद्याएँ दो प्रकार की होती हैं—पहली 'परा विद्या' और दूसरी 'अपरा विद्या'। भौतिक विज्ञान से परे ज्ञान को 'परा विद्या' अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान कहा जाता है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, खगोल, ज्योतिष, दर्शन, औषधि-विज्ञान, एवं यांत्रिक विज्ञान इत्यादि 'अपरा विद्या' है। परा-विद्या के अन्तर्गत सभी आत्म-विषयक ज्ञान एवं ब्रह्म-विद्या हैं। ये सभी ज्ञान-विज्ञान वेदों से ही निकले हैं। प्राचीन ऋषि 'नक्षत्र शास्त्र, गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, तकनीकी विज्ञान, दर्शन तथा चिकित्सा-शास्त्र को भलीभाँति समझते थे।

प्रश्न-16. संकल्प क्या है ?

उत्तर : किसी भी आयोजन के प्रारम्भ में काल-गणना की स्थिति व निश्चित समय, स्थान एवं आयोजन का प्रयोजन अर्थात् उद्देश्यों को बतानेवाले वाक्य-समूह के उच्चारण को संकल्प कहते हैं। संकल्प-उच्चारण में सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान आयोजन-उत्सव तक की काल-गणना बताई जाती है। संकल्प में नक्षत्रों और ग्रहों की तथा समकालीन भौगोलिक स्थिति, उत्सव के यजमानों तथा उत्सव में भाग लेनेवाले लोगों का भी विवरण होता है। संकल्प-उच्चारण के प्रारम्भिक भाग में आयोजन-कर्ता अथवा यजमान

एवं अतिथियों का परिचय भी कराया जाता है। संकल्प में आयोजन-कर्ता की पीढ़ियों की सही गणना से इतिहास का अधिकृत परिचय होता है। संकल्प की यह प्राचीन वैदिक परम्परा 'रिकॉर्ड'—लेखा-जोखा सुरक्षित रखने की एक अनुपम विधि है। संकल्प-उच्चारण की मौखिक परम्परा के कारण ही तथ्यों और घटनाओं को भावी पीढ़ी तक सुरक्षित रखा जा सका। संकल्प-उच्चारण के द्वारा ही एक सन्तति का ज्ञान दूसरी संतति को प्राप्त हुआ। श्रुति-परम्परा से रिकॉर्ड अथवा लेखा-जोखा सुरक्षित रखने की प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिली, इस कारण संकल्प को 'देशकाल संकीर्तन' के नाम से भी जाना जाता है। संकल्प निम्न रूप में पढ़ा जाता है।

'ओ३म् तत् सत्। श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे ऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कर्म क्रियते चेति।'

उपर्युक्त संकल्प के अनुसार इस पुस्तक के विमोचन/वितरण का समय निम्न है :

ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्ष 155, 521, 972, 949, 107; पृथिवी पर जीवन धारण/सृष्टि-रचना 51वाँ श्वेतवाराह कल्प का 1,972, 949, 107 वर्ष; सातवें वैवस्वत मन्वन्तर का 120, 533, 107वाँ वर्ष; 28वें कलियुग का 5107 वर्ष; विक्रम संवत् 2062; शक संवत् 1928, ज्येष्ठ शुक्ल 14, दक्षिणायन प्रारम्भ, जून 21 ईसवी सन् 2005। देखिए प्रश्न 17-21 के उत्तर।

संकल्प मौखिक रूप से काल आदि के विवरण संजोने, 'रिकॉर्ड लेखा-जोखा सुरक्षित' रखने की एक प्रामाणिक, अद्वितीय तथा प्राचीन वैदिक परम्परा है।

प्रश्न-17. हिन्दू धर्म कितना पुराना धर्म है ?

उत्तर : विश्व में सर्वाधिक पुराना धर्म 'हिन्दू धर्म' है। सर्वप्रथम धरती पर 1.97 बिलियन वर्ष पहले, अथवा 1 अरब, 97 करोड़

वर्ष पूर्व इस मानव-धर्म-'हिन्दू धर्म' का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक विज्ञान ने भी काल की इस लम्बी अवधि अथवा समय के इतने लम्बे अन्तराल को स्वीकार किया है। कॉरनेल युनिवर्सिटी, न्यूयार्क के 'स्पेस साइँस अथ्वा अन्तरिक्ष और खगोल विज्ञान' (Astronomy & Aerospace Science) विभाग के स्वर्गीय प्रोफेसर एवं पुलिट्जर पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध वैज्ञानिक कॉर्ल सेंगन, स्वर्गवास 1996, ने भी अपनी गणना में सूर्य का जन्म पाँच अरब वर्ष पहले तथा धरती को 4.5 बिलियन अथवा 4 अरब 50 करोड़ वर्ष पुरानी बतलाया है। उन्होंने यह भी बतलाया कि विश्व में केवल 'हिन्दू धर्म' ही ऐसा धर्म है जो पृथिवी की आयु की गणना बिलियन अथवा अरबों वर्षों में करता है।

नोट : बिलियन एक महत्त्वपूर्ण संख्या है जो अमेरिका में एक अंक के बाद नौ शून्य चिह्न के रूप में है, जबकि ब्रिटिश लोग इसे एक अंक के बाद बारह शून्य चिह्न के रूप में मानते हैं। इस पुस्तक में एक बिलियन को अमेरिका में उपयोग हो रहे एक अंक के बाद नौ शून्य लगाकर प्रयोग किया गया है। अत: भारतीय आँकड़ों के अनुसार एक बिलियन सौ करोड़ के बराबर हुआ। एक ट्रिलियन वर्ष 1000 बिलियन वर्ष का होता है।

अत: किसी को भी हिन्दुओं की इस बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि मानव-सभ्यता 1.17 अरब वर्ष पुरानी है।

प्रश्न-18. हिन्दू धर्म के अनुसार सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर अब तक कितना समय व्यतीत हो चुका है ?

उत्तर : प्रसिद्ध संविधान-वेत्ता, कानून के जनक, मनु की गणना के अनुसार, जब से पृथिवी पर मानव-जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है, अर्थात् सृष्टि प्रारम्भ हुई है, तब से सृष्टि-संवत् का 1,97,29,49,107वाँ वर्ष 2005 ईसवी सन् के समानान्तर चल रहा है। सृष्टि के एक चक्र में 14 मन्वन्तर होते हैं। वर्तमान मन्वन्तर सातवाँ मन्वन्तर है। इसको वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। एक मन्वन्तर

में 71 चतुर्युगों सहित एक सतयुग के 1,728,000 वर्ष भी होते हैं अर्थात् एक मन्वन्तर में कुल 308,448,000 वर्ष होते हैं। चतुर्युग में चार युग होते हैं। पहले युग को सत्युग, दूसरे को त्रेता, तीसरे को द्वापर, और चौथे युग को कलियुग कहते हैं। कलियुग 18 मार्च, 1998 ईसवी सन् को 5100 वर्ष पूरे करके चतुर्युग में वर्षों की संख्या निम्न प्रकार से है :

सतयुग	1,728,000
त्रेतायुग	1,296,000
द्वापरयुग	864,000
कलियुग	432,000

वर्तमान सृष्टि की रचना में चतुर्युग का अट्ठाइसवाँ क्रम चल रहा है। गणनाओं के अनुसार वर्तमान कलियुग ने 5106वाँ वर्ष बृहस्पतिवार, फरवरी 17, सन् 2005 ई॰ को पूरा कर, 5107वाँ नव वर्ष आरम्भ कर लिया है। उत्तर भारत में फाल्गुन के समाप्त होते ही अथात् चैत्र माह के कृष्ण पक्ष प्रतिपदा/एकम् से विक्रम संवत् का 2062वाँ वर्ष तथा शक संवत् का 1927वाँ वर्ष आरम्भ हुआ जो वर्तमान ईसवी सन् 2005 के शुक्रवार, मार्च 26 का दिन होता है। परन्तु दक्षिण भारत में विद्वानों के अनुसार चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से विक्रम सम्वत् का 2062वाँ वर्ष तथा शक सम्वत् का 1927वाँ वर्ष प्रारम्भ होता है जो वर्तमान ईसवी सन् 2005 के शनिवार अप्रैल 9 का दिन होता है।

हिन्दू पद्धति में तिथियों का प्रथम माह चैत्र से होता है। हर एक माह को चन्द्रमा की स्थिति पर आधारित दो भागों में बाँटा जाता है। महीने के पूर्वार्द्ध को कृष्ण पक्ष (कृष्ण अथवा प्रकाशहीन-काला), तथा उत्तरार्द्ध को शुक्ल पक्ष कहा जाता है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का प्रकाश धीरे-धीरे क्षय होता हुआ 15वें दिन के अन्त में पूर्णतया समाप्त हो जाता है जिसे अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमा का अर्थ पूर्ण चन्द्रमा से है। शुक्ल पक्ष के अन्तिम दिन को पूर्णिमा

अर्थात् पूर्णमासी कहा जाता है। पूर्णिमा के दिन ही चन्द्रमा पूर्णरूप से प्रकाशित होता है। उत्तर भारत में विक्रम संवत् के प्रत्येक नव वर्ष का प्रारंभ होली के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र मास के कृष्ण पक्ष से आरम्भ होता है। लेकिन गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है।

महीने की प्रथम तिथि को प्रतिपदा या पड़वा कहा जाता है। दूसरे दिन को द्वितीया, तीसरे दिन को तृतीया कहा जाता है, क्रमशः इस प्रकार गणना करने से 15 दिन पूर्ण होते हैं। वर्ष प्रतिपदा को नव वर्ष का प्रथम दिन माना जाता है। वर्ष प्रतिपदा को बड़े हर्ष और उल्लास से मनाया जाता है, देखिए 'प्रश्न 60, होली का वर्णन'। काल-गणक सूची के अनुसार एक वर्ष में निम्न महीने होते हैं :

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन।

सामान्य रूप से ये भारतीय महीने, ग्रीगेरियन अर्थात् ईसवी सन् के महीनों से निम्न प्रकार मेल खाते हैं :

मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी।

वर्तमान में पृथिवी पर सृष्टि अथवा जीवन-रचना का 1,97,29,49,108वाँ वर्ष चल रहा है, परन्तु ईसवी सन् का केवल 2006वाँ वर्ष ही है।

प्रश्न-19. 'ब्रह्मा के एक दिन' से आपका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : एक हजार चतुर्युगी से ब्रह्मा का एक दिन बनता है और उतनी ही चतुर्युगियों से ब्रह्मा की एक रात होती है। सृष्टि-रचना अथवा सृष्टि-विस्तार का समय भी ब्रह्मा का एक दिन होता है। सृष्टि के संकुचन अथवा विघटन को ब्रह्मा की निद्रा, रात अर्थात् प्रलय कहा जाता है। खरबों वर्षों तक ब्रह्माण्ड का विस्तार और उसके बाद संकुचन होता है। ब्रह्मा का एक दिन=4,320,000,000 वर्ष, ब्रह्मा की एक रात=4,320,000,000 वर्ष। एक अहोरात्र (दिन

तथा रात) 8,640,000,000 वर्ष, ब्रह्मा का एक वर्ष 360 अहोरात्र, ब्रह्मा की आयु 100 ब्राह्म वर्ष। अभी ब्रह्मा का 51वाँ वर्ष (द्वितीय प्रहरार्ध) चल रहा है। एक सौ वर्ष पश्चात् ब्रह्माण्ड पुनः अन्य सृष्टि-रचना के लिए फैलता है और यह चक्र अनिश्चित काल तक लगातार चलता रहता है, कारण—ब्रह्माण्ड अनन्त और अनादि है। 'ब्रह्मा के दिन' की गणना के लिए प्रश्न 21 का उत्तर भी देखिए।

1929 में एडविन हब्बल ने सिद्ध किया कि यह वैदिक सूत्र (नियम) सही है। अलबर्ट आइंस्टीन को इस सूत्र की सत्यता पर संदेह था, परन्तु हब्बल ने इसे सत्य सिद्ध कर दिया। निःसन्देह यह जानकारी हब्बल के जन्म से पूर्व निश्चित रूप से वेदों में थी।

प्रश्न-20. कल्प क्या है ?

उत्तर : सूर्य के आकाशगंगा में परिभ्रमण का काल एक मन्वन्तर कहलाता है तथा आकाशगंगा के स्वायम्भुव-मण्डल के परिभ्रमण-काल को एक कल्प कहते हैं। दूसरे शब्दों में 'एक सृष्टि-रचना की अवधि को कल्प कहते हैं।' प्राचीन वैदिक खगोलीय 'सूर्य सिद्धान्त' गणना के अनुसार चार अरब, तीन सौ बीस करोड़ वर्ष (4,320,000,000) से एक कल्प बनता है।

सृष्टि-रचना का एक पड़ाव एक कल्प कहलाता है। इसे ब्रह्मा का एक दिन भी कहते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा की एक रात अर्थात् प्रलय की अवधि भी एक कल्प कहलाती है। एक भारतीय सन्त—सिद्धार्थ गौतम 'महात्मा बुद्ध' के नाम से ईसा से 15वीं शताब्दी पूर्व विख्यात हुए थे। उन्होंने कल्प का अति सुन्दर उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया : 'हिमालय की सर्वाधिक ऊँची चोटियों से भी विशाल, लम्बी, और कठोर पर्वत की अत्यधिक ऊँची चोटी की कल्पना करो। अब सोचिए—एक व्यक्ति इसे मात्र दर्शन करने के लिए वाराणसी अथवा काशी से एक सौ वर्ष में एक बार इस पर्वत को रेशम के धागे से लपेटने के लिए जाता है। जितना समय

उस पहाड़ को पूरा लपेटने में लगेगा, वह समय एक कल्प कहलाता है।'

सृष्टि रचना की दीर्घ सृजनात्मक अवधि की तुलना में एक सौ वर्ष की मानवीय आयु केवल एक पलक झपकने के समान है। अगर रेडियम छड़ की विकिरण-क्रिया 700,000 वर्षों तक लगातार चल सकती है, और भूवैज्ञानिक समय-मापदण्ड के अनुसार प्री-कैम्ब्रियन काल 600,000,000 वर्ष पहले हो सकता है, तथा कार्ल सेगॉन, जिनके कार्यों को 'नासा-राष्ट्रीय विमान विज्ञान तथा अंतरिक्ष प्रशासन, अमेरिका' ने प्रामाणिक मानकर उन्हें सम्मानित किया गया है, उन्होंने कल्प पर गम्भीर सोच-विचार करके अनुसंधान द्वारा सिद्ध किया है कि 'कल्प का काल कल्पना से परे नहीं है।' (देखें उ॰ नं॰ 17)

'सूर्य सिद्धान्त' गणना के अनुसार चार अरब, तीन सौ बीस करोड़ वर्ष (4,320,000,000) से एक कल्प बनता है। विश्व में केवल हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसकी काल-गणना ही आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर सही उतरी है। हिन्दुओं को अपने ग्रंथों पर मान है।

प्रश्न-21. समय-गणना के मापदंड क्या हैं ?

उत्तर : वैदिक विचारों के अनुसार समय विराटाकार चक्रों में चलता रहता है। सृष्टि-निर्माण के साथ ही समय आरम्भ होता है और सृष्टि के अन्त होते ही समय-गणना भी समाप्त हो जाती है, और उसी समय विघटन अथवा प्रलय प्रारम्भ होता है। सृष्टि और प्रलय एक चक्र की भाँति हैं, क्योंकि चक्र में न तो कोई आरम्भ है और न ही अन्त। ये दोनों अति शनैः-शनैः, सूक्ष्म से सूक्ष्म गति से निर्विघ्न चले आ रहे हैं, जिनका बोध मनुष्यों को अनेक कालों तथा देव-युगों (प्र॰ 21 का नोट देखें) तक नहीं हो सकता। एक व्यक्ति का जीवन-चक्र तो अति सूक्ष्म है और जो केवल एक अति छोटी-सी सीधी रेखा से अंकित किया जा सकता है।

अगर अति विशालकाय समय-चक्रों से मानव-जीवन की सरेखीय अवधि की तुलना की जाए तो पता चलता है कि मानव-जीवन की अवधि सात समुद्रों में जल की एक बूँद की भाँति अति सूक्ष्म है। तथापि पाश्चात्य जगत् में इस सरेखीय समय-अवधि को मानक माना जाता है। पाठकों के लिए, इस अति-विशालकाय समय-चक्र की इकाई तथा मापक मानदण्ड नीचे दिए जा रहे हैं :

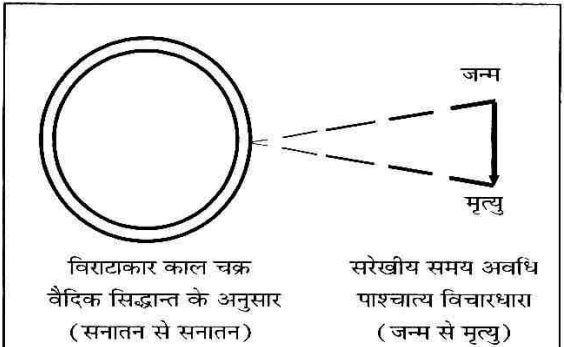

समय का सबसे बड़ा माप 'कल्प' 4.32 बिलियन वर्ष = 4,320,000,000 वर्ष

त्रुटि	–	एक क्षण का 33,750वाँ भाग
निमेष	–	एक क्षण का 3000वाँ भाग
विपल	–	एक क्षण का 2/5वाँ भाग
क्षण	–	1 सैकंड
पल	–	24 सैकंड
मिनट	–	60 सैकंड
घटी	–	24 मिनट
होरा	–	घण्टा (60 मिनट)
दिवस	–	एक दिन (24 घंटे)
सप्ताह	–	7 दिन
मास	–	चार सप्ताह (महीना)
वर्ष	–	12 मास
शताब्दी	–	एक सौ वर्ष
सहस्राब्दी	–	एक हजार वर्ष
देवयुग*	–	12000 देववर्ष अथवा 4320000 मानव-वर्ष अथवा एक महायुग
चतुर्युग/महायुग	–	सत्+त्रेता+द्वापर+कलियुग
चतुर्युगी	–	4,322,000 वर्ष
सतयुग	–	1,728,000 वर्ष
त्रेतायुग	–	1,296,000 वर्ष
द्वापरयुग	–	864,000 वर्ष
कलियुग	–	432,000 वर्ष

---

*नोट=देवयुग Geological times का, तथा मानव-वर्ष समय का द्योतक है। कुल नक्षत्र 27 हैं; सप्तर्षि एक-एक नक्षत्र में 100-100 वर्ष का निवास करते हैं (बृहत्सं॰ 13.4), तथा सप्तर्षियों का एक वर्ष मनुष्यों के 2700 वर्षों के तुल्य होता है। इसको सप्तर्षि संवत् कहते हैं।

('भारतीय कालगणना', डॉ॰ रविप्रकाश आर्य, 1998)

ईसवी सन् 2005, जून 21 को कलियुग ने 5106 वर्ष पूर्ण किए और कलियुग अथवा युगाब्द के 5107 नूतन वर्ष आरम्भ हुए। इसी भाँति, ईसवी सन् 2005, मार्च 25 को विक्रम संवत् के 2061 वर्ष पूर्ण किए तथा नूतन वर्ष, चैत्र, शुक्ल पक्ष, वर्ष–प्रतिपदा अर्थात् मार्च 26 से विक्रम संवत् के 2062 वर्ष आरम्भ हुए। पृथिवी वर्तमान समय में सूर्य के चारों ओर एक लाख कि॰मी॰ प्रति घंटे की गति से 96,60,00,000 कि॰मी॰ की परिक्रमा 365 ¼ दिन में करती है। पृथिवी 197 करोड़ वर्ष पहले, सूर्य के चारों ओर चक्कर काटने में 360 दिन लगाती थी, इसी कारण वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को 360^0 में विभाजित किया। वर्ष में 360 दिन अथवा 720 दिन-रात के अनुसार ही पंचांग बनाए। उस समय पृथिवी सूर्य से 92,955,630 मील दूर थी। चूँकि पृथिवी के सूर्य से निरन्तर दूर खिसकने के कारण पृथिवी की गति में परिवर्तन आया और ई॰स॰ 2003 में सूर्य से 93,926,384 मील दूर होने से (फ्लोरिडा विश्वविद्यालय ऐस्ट्रॉनॉमी विभाग वेब साइट) सूर्य की परिक्रमा में ज्यादा समय लगने के कारण करीब 5 ½ घंटे का समय बढ़ गया है, पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का सही समय 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट और 47.8 क्षण है। डॉ॰ आर्य के अनुसार पृथिवी का ध्रुव भी निरन्तर पीछे खिसकता रहता है, 72 वर्ष में लगभग एक अंश पीछे खिसक जाता है। अत: वर्तमान पंचांग अथवा कैलेण्डर में संशोधन की अति आवश्यकता है। यह संशोधन हर 72 वर्षों में अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान काल में यह संशोधन 1738 वर्ष पूर्व कलि संवत् 3361 अथवा 259 ख्रिस्ताब्द (क्रिश्चियन सन् A.D.) में हुआ था। उनका यह भी कहना है कि सम्भव है आर्यभट्ट ने ही वर्तमान स्वरूप पंचांग को प्रदान किया हो। तदनुसार वर्तमान पंचांग अथवा कैलेण्डर-संशोधन की अति आवश्यकता है।

भारतीय मासों और विदेशी कैलेण्डर के महीनों की तुलनात्मक तालिका :

वर्तमान प्रचलित रूप	संशोधित नूतन रूप
चैत्र=21 मार्च-20 अप्रैल	चैत्र=21 अप्रैल-21 मई
वैशाख=21 अप्रैल-20 मई	वैशाख=22 मई-21 जून
ज्येष्ठ=21 मई-21 जून	ज्येष्ठ=22 जून-21 जुलाई
आषाढ़=22 जून-22 जुलाई	आषाढ़=22 जुलाई-21 अगस्त
श्रावण=23 जुलाई-23 अगस्त	श्रावण=22अगस्त-21 सितम्बर
भाद्रपद=24 अगस्त-23 सितम्बर	भाद्रपद=22 सितम्बर-21 अक्तूबर
आश्विन=24 सितम्बर-23 अक्तूबर	आश्विन=22 अक्तूबर-21 नवम्बर
कार्तिक=22 अक्तूबर-21 दिसम्बर	कार्तिक=22 नवम्बर-21 दिसम्बर
मार्गशीर्ष=22 नवम्बर-21 दिसम्बर	मार्गशीर्ष=22 दिसम्बर-21 जनवरी
पौष=22 दिसम्बर-21 जनवरी	पौष=22 जनवरी, 20 फरवरी
माघ=22 जनवरी-20 फरवरी	माघ=21 फरवरी-21 मार्च
फाल्गुन=21 फरवरी-20 मार्च	फाल्गुन=20 मार्च-21 अप्रैल

एक मन्वन्तर=71 महायुग+एक सत्युग=308448000 वर्ष

एक कल्प=14 मन्वन्तर+एक सत्युग=4.32 अरब वर्ष

एक कल्प = 1000 चतुर्युग = ब्रह्मा का एक दिन = पृथिवी का सृष्टि/प्रलय काल = 4.32 अरब वर्ष = 4,320,000,000 वर्ष।

पृथिवी केवल एक कल्प तक ही सृष्टि धारण करने में समर्थ है, उसके पश्चात् धरा वसुन्धरा नहीं रहती।

ब्रह्मा की एक रात = एक कल्प = 4.32 अरब वर्ष = 1000 चतुर्युग = 4,320,000,000 वर्ष

दो कल्प = ब्रह्मा का एक दिन और रात = 8.64 अरब वर्ष = 8,640,000,000 वर्ष

ब्रह्मा का एक वर्ष = 8,64 × 365 = 31.536 खरब वर्ष

= 3,153,600,000,000 वर्ष

ब्रह्मायु के प्रथम प्रहरार्धे (व्यतीत हुए प्रथम 50 वर्ष)

= 15.7680 खरब वर्ष

ब्रह्मायु के द्वितीय प्रहरार्धे अगले 50 वर्ष = 15.7680 खरब वर्ष

ब्रह्मा (सम्पूर्ण ब्रह्मांड) की कुल आयु = 100 ब्रह्म वर्ष

वर्ष=31,15,36,00,00,00,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड सृष्टि-काल (सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रलय-काल की अवधि भी इतनी ही है)

ब्रह्मा के एक सौ वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की पूर्ण अवधि = सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक पूर्णकाल चक्र = एक ब्रह्मयुग = 31,15,36,00, 00,00,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु पुनश्च।

वैदिक काल में एक वर्ष में 360 दिन होते थे, अत: वैदिक गणना में 360 दिनों से गुणा करना है, 365 से नहीं। अत: वैदिक कालगणना अनुसार :

ब्रह्मा का एक वर्ष = 8.64 × 360 = 31.104 खरब वर्ष

= 3,110,400,000,000 वर्ष = 3.11 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मायु के प्रथम प्रहरार्धे (व्यतीत हुए प्रथम 50 वर्ष)

= 1555.21 खरब वर्ष = 155.5 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मायु के द्वितीय प्रहरार्धे अगले 50 वर्ष = 1.55521 खरब वर्ष

= 1.555 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मा (सम्पूर्ण ब्रह्मांड) की कुल आयु अथवा 100 ब्रह्म वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड सृष्टि-काल = 311,040,000,000,000 वर्ष। सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रलय-काल की अवधि भी इतनी ही है।

ब्रह्मा के एक सौ वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की पूर्ण अवधि = सम्पूर्ण ब्रह्मांड का एक पूर्णकाल चक्र = एक ब्रह्मयुग = 311,040,000, 000,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु।

ईसवी सन् 2005 में ब्रह्मांड का 155,521,972,949,107वाँ वर्ष आरम्भ हुआ है।

197 करोड़ वर्ष पहले कल्पारम्भ अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि तथा चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को हुआ था, इसलिए अश्विनी नक्षत्र को प्रथम नक्षत्र माना है। वर्षारम्भ भी अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही माना जाता है। इसलिए अश्विनी नक्षत्र को प्रथम, मेष राशि को पहली राशि और चैत्र मास को प्रथम मास माना है। आकाशगंगा अथवा परमेष्ठी मण्डल भी स्वायम्भुव मण्डल (Super Galactic Region, स्वायंभुव अथवा सम्पूर्ण विश्वदेवों अथवा All Galaxies) की परिक्रमा एक कल्प में करती है। Scientific American, March 2003, page 54 के अनुसार सूर्य 220 कि॰मी॰ प्रति सैकंड की गति से यात्रा करता है। इस गति की गणना से सूर्य 30 करोड़ वर्षों में आकाश- गंगा के गिर्द चक्र, एक मन्वन्तर में करता है। पृथिवी 30 कि॰मी॰ प्रति सैकंड की गति से सूर्य की परिक्रमा 365 ¼ दिन में करती है, देखिए पूर्वांकित नोट; पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का सही समय 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट और 47.8 क्षण है। चान्द्रमास 30 चन्द्र तिथियों का माना जाता है, पर 27 दिन 6 घण्टे में चन्द्रमा एक चान्द्र मास में, पृथिवी की परिक्रमा करता है; यह सौर मास के 29 दिन एवं 30 सैकंड के बराबर होता है, परन्तु वर्तमान सौर मास 30 दिन 10 मिनट 30 सैकंड का होता है। इसलिए तिथियों में तालमेल करना होता है। सृष्टि का प्रारम्भ, कल्पारम्भ अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ हुआ, इस कारण इन्हें प्रथम नक्षत्र, प्रथम राशि और प्रथम मास का श्रेय प्राप्त हुआ। सृष्टि का आरम्भ सूर्योदय से हुआ, अतः प्रथम दिन रविवार कहलाया। दिन के 24 घंटों को प्रत्येक घंटा प्रत्येक ग्रह का माना है। सप्ताह के प्रथम दिन का पहला घंटा सूर्य से, दूसरे दिन का पहला घंटा चन्द्र से, अतः सोमवार कहलाया। इसी क्रम से शेष दिनों के नामकरण हुए। लाखों वर्षों पूर्व नक्षत्रों और राशियों

की स्थिति एवं आकृति भिन्न थी, और आगे भी भिन्न होगी, इसी कारण वैदिक ऋषियों ने नक्षत्रों और राशियों की स्थिति एवं आकृति को आधार न मानकर उनके चक्र एवं गति को प्राथमिकता प्रदान की। कालांतर में विदेशी ज्योतिर्विदों ने भारत के वैदिक ऋषियों से शिक्षा ग्रहण कर नक्षत्रों और राशियों की स्थिति एवं आकृति को आधार मानकर ज्योतिष विद्या को अन्यत्र फैलाया।

प्राचीन वैदिक ऋषि मैत्रेय ने समय की इकाइयों को निम्न प्रकार दर्शाया है। भास्कराचार्य ने भी इन इकाइयों का प्रयोग किया है :

एक वेधा के बराबर	100 त्रुटि
एक लव के बराबर	3 वेधा
एक निमेष के बराबर	3 लव
एक काष्ठा के बराबर	18 निमेष
एक कला के बराबर	30 काष्ठा
एक घटी के बराबर	30 कला, 60 पल, एक नाड़ी
एक पल के बराबर	60 विपल
एक मुहूर्त के बराबर	2 नाड़ी, 2 घटी
एक अहोरात्र अथवा दिन और रात, 24 घंटे	30 मुहूर्त

वैदिक खगोल, गणित और ज्योतिष में त्रुटि समय की सबसे छोटी इकाई है जो कि एक सैकंड के 33750वें हिस्से के बराबर है। उपर्युक्त समय-मापक अभी भी वर्तमान वैदिक खगोल, गणित और ज्योतिष में प्रर्युक्त होते हैं।

VEDIC ERA DYNAMICS / वैदिक कालगणना मापदंड

(वेद, सूर्य सिद्धान्त, मनुस्मृति, योगवासिष्ठ ग्रन्थ, तथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनुसार)

ONE KALI/एक कली

ONE COMPLETE ROTATION OF EART AROUND THE SUN पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा का माप दंड		KALIYUGA कलियुग	CHATURYUGA चतुर्युग/महायुग	MANVANTAR मन्वन्तर	KALPA कल्प
VEDIC TIMES वैदिक काल में	MODERN TIMES आधुनिक काल में	अश्विनी नक्षत्र की सीधी रेखा में सभी ग्रहों के होने से 'एक कली' कहलाता है। एक कलियुग में ४३२,००० वर्ष होते हैं।	चतुर्युग/महायुग= सतयुग+त्रेतायुग+ द्वापरयुग +कलियुग अतः एक चतुर्युग अथवा महायुग में कलियुग के ४३२,००० वर्ष, द्वापरयुग के ८६४,०००वर्ष, त्रेतायुग के १,२९६,०००वर्ष, और सतयुग के १,७२८,०००वर्ष। चतुर्युग के कुल =४,३२०,०००वर्ष होते है।	पृथ्वी सहित सौर मंडल की आकाश गंगा अथवा परमेष्ठी मण्डल के चारों ओर एक पूर्ण प्रदक्षिणा करने से एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर का समय=७१ महायुग + एक सतयुग। अतः एक मन्वन्तर में कुल = ३०८४४८०००वर्ष होते है।	आकाश गंगा सहित अन्य परमेष्ठी मण्डल/ विश्वदेवों (Group of Galaxies) के द्वारा स्वयंभुव मण्डल/ (Super Galactic Region) की एक परिक्रमा करने से एक कल्प होता है। एक कल्प = १००० चतुर्युग = ब्रह्मा का एक दिन = ४,३२०,०००,००० वर्ष
अर्थात् १९७ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा ३६० दिन में करती थी। इसलिये वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को ३६०° में विभाजित किया था जो अभी तक लागू होता है।	वर्तमान समय में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काटने में पृथ्वी ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४७.८ क्षण लगाती है।	द्वापरयुग= X २ कलियुग; त्रेतायुग= X ३ कलियुग; सतयुग= X ४ कलियुग 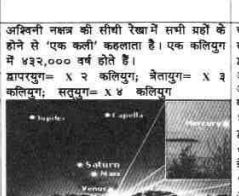 Partial alignments of planets occurred on April 23, 2002.jpg			

वर्तमान समय गणना :

ब्रह्माण्डोत्पत्ति का १५५,५२१,९७२,९४९,१०७वाँ वर्ष; ५१ वें श्वेत वाराह कल्प; सातवाँ मन्वन्तर: वैवस्वत; सृष्टि संवत्/ पृथ्वी पर जीव उत्पत्ति के १,९७२,९४९,१०७ वर्ष; वैदिक सौर वर्ष : २८ वें कलियुग का ५१०७ वर्ष; विक्रम संवत् : २०६२, ज्येष्ठ शुक्ल१४ ; शक संवत् १९२८; मंगल वार, २१ जून, २००५ ईसवी वर्ष A. D.; दक्षिणायन आरम्भ, Summer solstice: Southward migration of our sun begins.

ब्रह्माण्ड में पृथ्वी का ठिकाना : अनन्त विश्व में अपना घर

Our Home in the Universe *Where in the Universe do we live?*

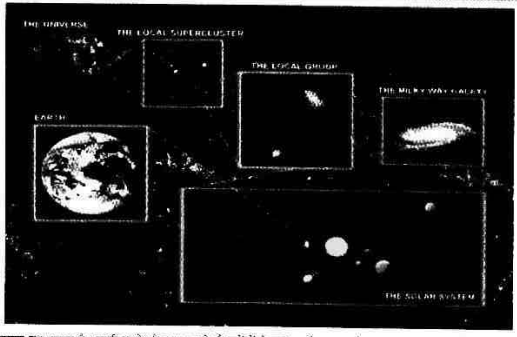

ब्रह्माण्ड में हमारा घर - यह चित्र ब्रह्माण्ड में हमारा पता बताता है । पृथ्वी हमारे सौर मण्डल के नौ ग्रहों में से एक ग्रह है। हमारा सौर मण्डल १,००,०००,०००,००० (एक हजार करोड़) से भी अधिक सौर-मण्डलों वाली आकाश-गंगा में से एक है। हमारा आकाश गंगा अनुमानत: ३० आकाश-गंगाओं अथवा परमेष्ठी मण्डल के दो बड़े समूहों में से एक है। हमारा परमेष्ठी मण्डल ब्रह्माण्ड के केन्द्र, स्वयम्भुव के छोर पर स्थित है । आधुनिक विज्ञान की खोज यहाँ समाप्त हो जाती है और ब्रह्माण्ड के एक तिहाई भाग तक ही पहुँच पाती है, किन्तु ब्रह्माण्ड वास्तव में इससे कहीं विशाल है। वैदिक ऋषियों के अनुसार आकाश-गंगाओं अथवा परमेष्ठी मण्डल का झुण्ड ब्रह्माण्ड के महान-केन्द्र, जिसको स्वयम्भुव कहते हैं उसकी परिक्रमा करता है। ऋषियों ने स्वयम्भुव केन्द्र की इस एक परिक्रमा के काल की गणना ४,३२०,०००,००० वर्ष निश्चित की है और उसको ब्रह्मा का एक दिवस अथवा कल्प कहा है।

Modified and adopted from

परमेष्ठी मण्डल अथवा अनन्त विश्वदेव

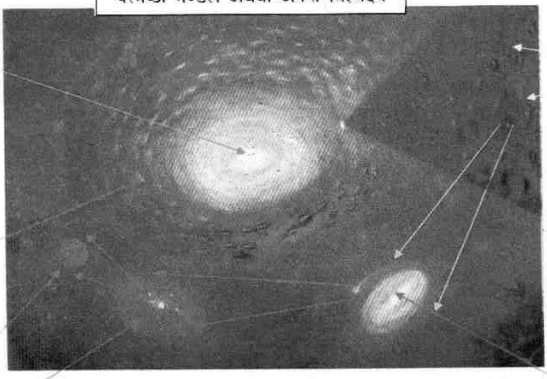

ब्रह्माण्ड/CELESTIAL UNIVERSE अथवा सृष्टि-यज्ञ COSMIC YAJNYA का अति सामान्य मानचित्र केवल दर्शकों को समझाने हेतु भारतीय कलाकार मोहन लाल शर्मा द्वारा प्रदत्त

प्रश्न-22. कोई भी व्यक्ति समय की इतनी लम्बी संख्याओं को कैसे गिन अथवा याद कर सकता है ?

उत्तर : प्राचीन वैदिक ऋषि, महात्मा और सत्यद्रष्टा सृष्टि-संकुचन और उसके लगातार विस्तार को जानते थे। खगोल शास्त्र, गणित और ज्योतिष विज्ञान भी उनके जीवन के एक अंग थे, जैसे कि वेदों का पढ़ना और पढ़ाना। सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद-भाष्य 1.50.40 में प्रकाश की गति का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ आधे निमेष, एक क्षण के 1500वें भाग में सूर्य की किरण 2202 योजन चलती है (एस॰ आर॰ एन॰ मूर्ति)। 'योजन' के मापदंड निम्नलिखित हैं :

1 योजन	चार कोस
1 कोस	2000 दण्ड
1 दण्ड	2 गज
1760 गज	1 मील
0.621 मील	एक किलोमीटर

अनुमानत: एक योजन नौ मील के बराबर है और प्रकाश आधे निमेष अथवा एक सैकंड के 1500वें भाग में 2202 योजन की गति से चलता है। इस प्रकार प्रकाश की गति 1,87,660 मील प्रति सैकंड हुई। आधुनिक गणना से प्रकाश की गति 186,281,7 मील प्रति सैकंड होती है। 1887 में माइक्लसन तथा मोरली ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि प्रकाश का वेग 186,281,7 मील प्रति सैकण्ड है। आधुनिक वैज्ञानिक गणना के अनुसार प्रकाश एक वर्ष में 5,874,579,691,000 मील की यात्रा करता है, लेकिन इसे कौन याद कर सकता है? प्राचीन वैदिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार गुरुकुलों, तथा पाठशालाओं (पोशालों) में गणितीय सारिणी और दूसरी गणनाओं को प्रतिदिन याद करवाकर विद्यार्थियों को तैयार करते थे।

प्राचीन वैदिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को

गुणात्मक खण्डों सहित इन सारिणियों को स्मरण करवाया जाता है।

प्रश्न-23. ब्रह्माण्ड रचना के अनुसार वर्तमान सृष्टि के विघटन अथवा प्रलय आरम्भ होने में अभी कितना समय शेष है ?

उत्तर : सृष्टि के अन्त में अभी बहुत समय शेष है। जैसे कि प्रश्न 21 में गणना की गई है—नक्षत्र, आकाशगंगा अथवा परमेष्ठी-मण्डल, स्वायम्भुव मण्डल (विश्वदेवों, Galaxies), तथा सौर मण्डल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु 31,10,40,00,00,00,000 वर्ष है। एक कल्प की आयु 1000 चतुर्युग, अथवा ब्रह्मा का एक दिन, अर्थात् पृथिवी के सृष्टि/प्रलय-काल की आयु 4.32 अरब वर्ष (4,320,000,000 वर्ष) है। पृथिवी केवल एक कल्प तक ही सृष्टि धारण करने में सार्थक है, उसके पश्चात् धरा वसुंधरा नहीं रहती। अतः वर्तमान पृथिवी पर सृष्टि की समाप्ति से पूर्व 2,347,050,894 वर्ष अभी भी 2005 ई॰ सन् (2005 A.D.) तक बाकी है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड, के भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक स्टीफन हॉकिंग ने सूर्य की आयु दस अरब वर्ष बतलाई है। इसके पश्चात् सूर्य का इतना फैलाव होगा कि वह पृथिवी को पूरी तरह निगल जाएगा अर्थात् सूर्य पृथिवी को अपने में विलीन कर लेगा।

इन वैदिक आँकड़ों पर किसी को आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वैदिक गणना भी ब्रह्माण्ड की आयु को अरबों वर्षों में करती है।

प्रश्न-24. राम-रावण युद्ध कब हुआ था ?

उत्तर : राजा दशरथ और श्रीराम के शासनकाल में ऋषि वाल्मीकि, भारद्वाज आश्रम में रहते थे। वाल्मीकि ऋषि ने काव्यरूप में भी राम के जीवन का वर्णन श्रीराम के राज्याभिषेक समारोह में किया जो कालांतर में 'रामायण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रामाणिक रामायण केवल वाल्मीकि रामायण ही है, क्योंकि ऋषि

वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे और उन्होंने स्वयं ही इस ग्रंथ की रचना की थी। वायु पुराण 70/48 सन्दर्भ के अनुसार 'वाल्मीकि रामायण' की रचना त्रेतायुग के दौरान हुई थी। रावण को पराजित हुए March 20, 2004 ई॰ सन् तक 18,149,104 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, March 20, 2004 ई॰ सन् तक कलियुग के 5105 वर्ष पूरे हो गए, उत्तर नं॰ 18 देखें। श्री हनुमान ने लंका की गुप्त यात्रा के दौरान चार दाँतों वाले हाथियों–मेस्टाडोन/Mastadon हाथियों को वहाँ देखा था। ये मेस्टाडोन–हाथी जैसे प्राणी अब समाप्त हो चुके हैं, लेकिन आधुनिक विज्ञान के अनुसार ये मेस्टाडोन हाथी करीब दो करोड़ पाँच लाख वर्ष पहले अस्तित्व में थे। भूगर्भ–विज्ञान के प्रमाण–स्वरूप मानव–निर्मित समुद्री पुल के अवशेष अभी भी 'सेटेलाइट स्टडी' से ज्ञात होते हैं।

रामायण–काल कोई कोरी कल्पना नहीं है। रामायण–काल की वैज्ञानिक ढंग से सप्रमाण पुष्टि की गई है।

नोट : बहुत काल पहले रामायण का अनुवाद थाइलैंड और इण्डोनेशिया इत्यादि अन्य पूर्वी देशों की भाषाओं में हो चुका था। आजकल रामायण अरबी, पर्शियन तथा अंग्रेजी भाषाओं में भी पाई जाती है। वर्तमान में रामायण थाइलैंड ओर इण्डोनेशिया की राष्ट्रीय गाथा है और इन देशों के राष्ट्रीय नाटक भी इसकी पुष्टि करते हैं। इनके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अध्ययन भी यही सिद्ध करते हैं कि रामायण–काल, महाभारत–काल के बहुत पहले घटित हुआ था। इस सन्दर्भ में पाठकवर्ग पुस्तक के अंत में दिए गए 'कालक्रमानुसार परम्परा' अध्याय अवश्य देखें।

प्रश्न–25. क्या श्री हनुमान मनुष्य थे ?

उत्तर : श्री हनुमान मनुष्य थे–इसमें कोई भ्रांति नहीं है और होनी भी नहीं चाहिए। क्या किसी पशु को श्री की पदवी से सुशोभित किया जाता है? वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में द्वितीय

सर्ग के प्रथम श्लोक में सुग्रीव को 'वीर सुग्रीव' से संबोधित किया गया है। क्या किसी ने बन्दर को 'वीर बन्दर' कहते सुना है? डॉ॰ रवि प्रकाश आर्य के अनुसार मंगोल जाति के लोगों को उस काल में वानर कहा जाता था। हनुमान तथा सुग्रीव मंगोल जाति के थे। उसी प्रकार हिमाचल में किन्नौर में रहनेवाले लोग किन्नर तथा वर्तमान अफगानिस्थान अथवा गान्धार में रहनेवाले लोगों को गन्धर्व कहा जाता है। उस समय स्थान-भेद से मनुष्यों का नामकरण किया जाता था, जैसे आज भी पंजाब में रहनेवाले को पंजाबी, गुजरात में बसनेवालों को गुजराती आदि। यही स्थिति वैदिक काल में थी, मत्स्य प्रदेश के लोगों को मत्स्य कहा जाता था। उनके क्षेत्रीय नाम का शाब्दिक अर्थ करना यथा वानर का बन्दर, मत्स्य का मछली तथा ऋच्छ का रीछ निहायत मूर्खता होगी। ऐसी भूलें समय-समय पर तथा कथित विद्वान् लोग समझ या न समझकर करते रहे हैं। हनुमान के बन्दर न होकर आदमी होने में अन्य प्रमाण भी हैं—यथा, श्रीराम प्रथम बार हनुमान से मिलने पर उनके वार्तालाप से प्रभावित होकर लक्ष्मण से कहते हैं :

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, द्वितीय सर्ग।।28।।

अर्थात् 'हनुमान उच्च काटि के विद्वान् हैं.....।'

ननु व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, द्वितीय सर्ग।।29।।

'निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि लम्बे समय तक बोलने पर भी इन्होंने भाषागत कोई भी त्रुटि नहीं की है।'

क्या मनुष्य के अतिरिक्त कोई अन्य प्राणी विद्वान् हो सकता

है? क्या कोई अन्य प्राणी व्याकरण का अध्ययन केवल एक बार ही नहीं, परन्तु अनेक बार कर सकता है? अत: मनुष्यो, अपनी बुद्धि से सोचो! भारत के बाह्य आक्रमणकारियों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को समूल नष्ट करने के प्रयासों से हिन्दुओं के पूर्वजों को बन्दर बनाकर हिन्दुओं के मुँह पर तमाचा मारा है। हिन्दू लोगो! अपने-आपको इतना हीन न करो और न ही अपने अस्तित्व को समाप्त करो।

एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे भारत के विभिन्न प्रान्तों में 'केश' शब्द प्रयुक्त होता है, पर 'बाल' शब्द का प्रयोग सिर के 'केशों' के लिए असम और महाराष्ट्र में अनुपयुक्त एवं अति दूषित है। इन स्थानों में 'बाल' शब्द का प्रयोग गुप्त अंगों के 'केशों' के लिए होता है। इसी तरह हिन्दी के शब्द 'चरण-पाद' के अर्थ को पैर न समझकर अगर आम बोली का, उर्दू भाषा का शब्द 'पाद' समझ लें अथवा अर्थ कर लें तो क्या होगा? इसी प्रकार से मंत्रों/श्लोकों में प्रयुक्त संस्कृत का अनुवाद करते हुए अलग शब्दों का भिन्न भाषाओं में अनुवाद अन्यथा अर्थों को ज्ञापित करता है। अत: संस्कृत शब्द 'वानर' का सन्दर्भ-सहित सही अर्थ 'मंगोल समुदाय के लोगों' से होता है।

हमारे मतानुसार-सन्दर्भ-सहित सही संस्कृत शब्द के अर्थ 'वानर' अथवा 'वो नर' को उपयोग में न लेकर हिन्दी के शब्द 'बन्दर' का प्रयोग करके स्याम, चम्पा, इण्डोनेशिया आदि देशों के 'मंगोल समुदाय के लोगों' की भर्त्सना की गई है, जबकि मंगोल समुदाय के स्याम, चम्पा, इण्डोनेशिया आदि देशों के लोग, करोड़ों वर्ष पश्चात् अभी भी 'श्रीराम और सीता माता' की गाथा को आनन्द से गाते हैं और 'सीता माता' से आशीर्वाद भी माँगते हैं। इससे बढ़कर ज्वलन्त उदाहरण विश्व के इतिहास में नहीं मिल सकता!

संस्कृत शब्द 'वानर' का यहाँ सन्दर्भ सहित अर्थ 'वो नर'

अर्थात् 'मंगोल समुदाय के लोगों' से होता है।

प्रश्न-26. महाभारत-युद्ध और कलियुग का प्रारम्भ कब हुआ?

उत्तर : 3138 ई॰ पू॰ द्वापर युग में महाभारत-युद्ध हुआ था। महाभारत-युद्ध के 36 वर्ष पश्चात् जब योगेश्वर श्रीकृष्ण ने पार्थिव शरीर को त्यागा, तब से कलियुग आरम्भ हुआ। कलियुग के प्रथम वर्ष का पहला महीना प्रमाथी कहलाता है, जो कि 5106 वर्ष पहले 3,102 ईसा पूर्व 20 फरवरी, प्रात:काल के दो बजकर 27 मिनट और 30 सैकंड पर आरम्भ हुआ। ईसा-काल में परवर्ती 21 मार्च 2004 को कलियुग ने 5106वें वर्ष में प्रवेश किया है। 1582 ईसवी में पोप ग्रैगरी त्रयोदश (xiii) ने ग्रिगेरियन कैलेंडर लागू किया, परन्तु पुराने क्रिश्चियन-जुलियन कैलेंडर और ग्रिगेरियन में विसंगति होने के कारण कलियुग की सही तिथि ईसा-काल से मेल नहीं खाती है। ग्रिगेरियन कैलेंडर आजकल एक मुख्य कैलेंडर अथवा तिथिपत्र माना जाता है, और केवल लकीर के फकीर रसियन ऑर्थोडॉक्स चर्च से प्रभावित स्थानों को छोड़कर विश्व के अधिकतर देशों में अपनाया जाता है।

नोट—पुस्तक के अंत में दी गई समय-सारिणी (चार्ट) विश्व के धर्मों का तुलनात्मक अध्ययनरत विद्यार्थियों के संदेह को दूर कर सकती है। इस सारिणी से यह भी जाना जा सकता है कि यहूदी-हिब्रु-ज्यूइश वर्ष ईसा के 3761 पूर्व (बी॰सी॰) आरम्भ हुआ था। चीनी वर्ष का आरम्भ ईसा सन् के 2698 वर्ष पहले हुआ। पर्सियन या जोरोष्ट्रियन वर्ष का आरम्भ ईसा के 1850 वर्ष पूर्व हुआ था। इसी प्रकार जैन या महावीर वर्ष ईसा के 536 वर्ष पूर्व एवं विक्रम-काल या संवत् का प्रारम्भ 57 वर्ष ईसा-पूर्व हुआ था। ईसा के बाद के वर्षों (A.D.) के कैलेंडरों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है। शक संवत् अथवा शक वर्ष का प्रारम्भ ईसा के 78 वर्ष बाद, मुहम्मद या मुस्लिम वर्ष का प्रारम्भ ईसा

के 580 वर्ष बाद और सिक्ख या गुरु नानक वर्ष का प्रारम्भ ईसा के पश्चात् 1469 में हुआ था।

जब यहूदी-हिब्रु-ज्यूइश एवं चीनी वर्ष-काल, क्रिश्चियन कैलेंडर के पहले विद्यमान हो सकते हैं, तब पाश्चात्य विद्वानों को हिन्दू वर्ष के प्रारम्भ को मानने में आपत्ति क्यों होती है? हिन्दू सभ्यता के द्वारा माने गए काल-गणना के मापदण्डों की अवहेलना भी पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई एवं ऐतिहासिक प्रामाणिक दस्तावेजों को भी इन्होंने मानने से इन्कार कर दिया, जबकि इस दिशा में मिश्रित सभ्यताओं के सन्दर्भ तथा खुदाई में प्राप्त अवशेष अब भी प्रमाण के रूप में मिल रहे हैं, जिनसे हिन्दू वर्ष के प्रारम्भ की पुष्टि होती है। इस प्रकार के प्रमाणों का विवरण भी इस पुस्तक के अध्याय 9 में दिया गया है।

द्वापर युग में 3138 ईसा- पूर्व महाभारत युद्ध हुआ था। योगेश्वर श्रीकृष्ण के पार्थिव शरीर त्यागने के समय से कलियुग अथवा युगाब्द का प्रारम्भ ईसा- पूर्व 3102 में हुआ था।

प्रश्न-27. आर्य शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर : योगी अरविन्द घोष ने 'आर्य' शब्द की परिभाषा इस प्रकार से दी है : 'वह व्यक्ति जिसका जीवन भलीभाँति संयमित है, जो साहस के साथ, विनम्रता, पवित्रता, मानवता, तथा करुणा के साथ गरीबों और निर्बलों की रक्षा करने की क्षमता रखता है, जो सामाजिक कर्तव्यों का पालन और विद्वानों का आदर करने वाला है। ऐसे सभ्य एवं श्रेष्ठ व्यक्ति को ही आर्य कहते हैं।'

आर्य का सरल अर्थ 'श्रेष्ठ' है। सही नामकरण 'आर्य' है, न कि आर्यन्।

वाल्मीकि रामायण में सीतादेवी ने श्रीराम को 'आर्य' से सम्बोधित किया था। श्री वेदव्यास ने 'आर्य' शब्द का अर्थ महाभारत 8.82.83 में इस प्रकार किया है :

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्मतोऽस्मीति करोत्यकार्यं, तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं, नान्यस्य दुःखे भवति विषादी।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं, स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

'आर्य वह है जो कि न तो घमण्डी है, न ही शत्रुता को उकसाता है, और न ही मुसीबतों में निराश होता और न ही असावधानी से कार्य करता है। आर्य न तो अभिमानी होता है, न ही किसी का शोषण करता है, न ही निष्कृट कार्य करता है। उसके बारे में तो यही कहा जाएगा कि उसमें सत्पुरुष के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं।'

निम्न जनश्रुति 'आर्य' के गुणों की सरल व्याख्या करती है:

ज्ञानी तुष्टश्च दांतश्च, सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्योष्टभिर्गुणैः॥

आर्यजन के आठ गुण :

1. वेदों का ज्ञाता।
2. हर स्थिति में सन्तोष भाव को अटल रखनेवाला।
3. विपत्ति में आत्म-नियन्त्रण रखनेवाला।
4. सत्यवादी।
5. इन्द्रियों को वश में रखनेवाला।
6. स्वभाव से दानी दाता।
7. विनम्र।
8. उदार हृदय वाला।

वास्तव में 'आर्य' शब्द मनुष्यों के गुणों का द्योतक है। ब्रिटिश लोग 'आर्य' शब्द का केवल अशुद्ध रूप आर्यन् ही नहीं कहते थे बल्कि मनघड़न्त मिथ्या धारणा फैलाकर कहा कि 'आर्यों ने भारत पर आक्रमण करके अपनी संस्कृति और सभ्यता को उत्तरी भारत में स्थापित किया था।' अंग्रेजों ने यह मिथ्या धारणा अपने

शासन के दौरान इसलिए फैलाई कि भारतीय यह नहीं कह सकें कि ब्रिटिश विदेशी हैं और कोई भी भारतीय उन्हें भारत छोड़ने पर मजबूर न कर सके, क्योंकि आर्य लोग भी बाहर से आए विदेशी लोग हैं। विस्तृत रूप से 'विकृत कालक्रम अध्याय' देखिए। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति द्वारा एक और भ्रान्त धारणा फैलाई कि "दक्षिण भारत के 'द्रविड़' एक दूसरी जाति के हैं।" उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार इस झूठी बात का प्रयोग करके ही किया। 'द्रविड़' शब्द का शुद्ध अर्थ 'दैवीय समृद्धि' है। 'द्रविड़' लोग उनको कहते हैं जो समृद्धि से परिपूर्ण हैं। द्रविड़ वे हैं जिनके पास धन-दौलत, सम्पत्ति और वैभव है, देखें उत्तर 49, "**परद्रव्याणि लोष्ठवत्**। (चाणक्य नीति 12.13) '**पर** का अर्थ **पराया** और **द्रव्याणि** का अर्थ धन' होता है। प्राचीन समय से विद्वान लोग धन-धान्य से सम्पन्न व्यक्ति को 'द्रविड़' तथा महाशय/महानुभाव/सत्पुरुष और श्रेष्ठ व्यक्ति को 'आर्य' शब्दों से सम्बोधित करते रहे हैं।

अथर्ववेद के मंत्र 12.5.8-10 ने धर्म को परिभाषित करते हुए 'द्रविणम्' का वर्णन 'दिव्य समृद्धि' किया है। अथर्ववेद का एक अन्य मंत्र 19.71.1 भी इसी अर्थ 'धन और सम्पत्ति' की पुष्टि करता है, जैसे नीचे दर्शाया गया है :

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।। अथर्व० 19.71.1

इसी प्रकार 'पाण्डव गीता' के श्लोक 28 में कहा है :

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।'

'द्रविणम्' की परिभाषा में 'जीवन को सुखी और समृद्धिपूर्ण'

दर्शाया गया है, देखें अध्याय 2, दैनिक पारिवारिक प्रार्थनाएँ।

अतः द्रविड़, आर्य आदि शब्दों को किसी क्षेत्र-विशेष से सम्बद्ध करके देखना अथवा इनका क्षेत्रीय नामकरण करना निहायत भूल है, साथ ही ऐतिहासिक एवं सामाजिक अन्याय भी। ऐसी भूलें समय-समय पर विद्वानों ने जान-बूझकर अथवा नासमझी से की हैं। 'आर्य' शब्द मनुष्यों के रूप-रंग, जाति-प्रजाति की ओर संकेत नहीं करता। वैदिक लोग समृद्ध-वैभवशाली-धनवान् व्यक्ति को 'द्रविड़' और श्रेष्ठ व्यक्ति को 'आर्य' शब्दों से सम्बोधित करते आए हैं।

प्रश्न-28. स्वस्ति या स्वस्तिक ('卐') किसको कहते हैं ?

उत्तर : स्वस्ति (सु + अस्ति = अच्छा है) का अर्थ शान्ति, उन्नति और समृद्धि है। स्वस्ति का द्योतक खरोष्ठी लिपि में चौकड़ी जैसा चिह्न '𐩷' है। इसका विपरीत दिशा में अंकित कर रहा भुजाओं वाला चिह्न '卐' भी स्वास्तिक है। स्वस्तिक शब्द अपभ्रंश है। खरोष्ठी लिपि अब लुप्तप्राय हो चुकी है, परन्तु स्वस्ति का '𐩷' अथवा '卐' चिह्न विश्व के सभी हिन्दुओं को मान्य है। किसी भी उत्सव अथवा शुभ अवसर के प्रारम्भ में स्वस्ति '𐩷' अथवा '卐' को समृद्धि दिलानेवाले चिह्न के रूप में बनाया जाता है। **(प्रश्न संख्या 10 भी देखें)**

निम्न चित्र में इण्डोनेशिया (बाली) द्वीप-स्थित नौवीं शताब्दी के एक हिन्दू मंदिर के पत्थर के मेहराबदार द्वार के दोनों ओर बने स्वस्ति '𐩷' '卐' के चिह्न :

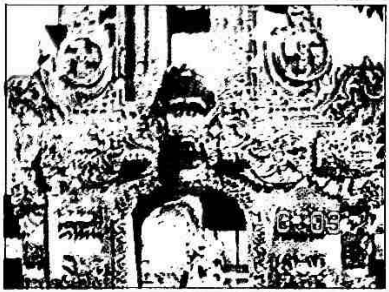

ईसवी सन् की नौवीं शताब्दी के आसपास बना पत्थर का विशालकाय हिन्दू मंदिर जो अभी भी बाली द्वीप इण्डोनेशिया में स्थित है, उसके मुख्य द्वार पर घड़ी के हाथों की सही दिशा में '卐' और घड़ी के हाथों की विपरीत दिशा में '卍' स्वस्ति के चिह्न अंकित हैं।

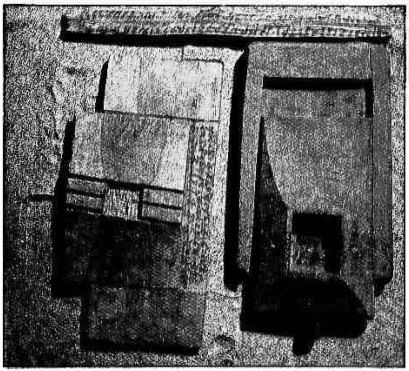

मध्य एशिया में किरगिस्तान के समीप निया जिंगयांग में ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी की खरोष्ठी लिपि, अरामिक मूल की भारतीय वर्णमाला।

प्राचीन संसार का सिल्क मार्ग, पुरातात्त्विक उत्खनन के स्थान 'निया' जिंगयांग को प्रदर्शित करता हुआ।

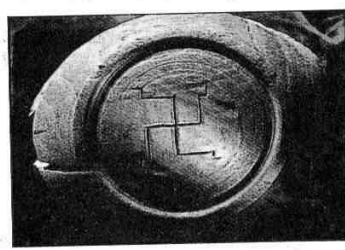

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी का काष्ठ कटोरे पर अंकित स्वस्ति चिह्न, जो मध्य एशिया के प्राचीन सिल्क मार्ग पर स्थित 'निया' नामक जगह से प्राप्त हुआ।

'द नेशनल ज्योग्राफिक मैगज़ीन' वॉल्यूम 189, नं॰ 3, मार्च 1996 अमेरिका की प्रसिद्ध भौगोलिक पत्रिका है। इस अंक में विश्व के प्राचीन रेशम उद्योग के मार्गों का पता लगाते समय 'जो सिल्क मार्ग का खोया हुआ हिस्सा मध्य काल में मध्य एशिया से होकर गुजरता था, उस रास्ते के आसपास मिली कब्रों की खुदाई में प्राप्त वस्तुओं पर स्वस्ति के चिह्न मिले।' पुरातात्त्विक उत्खनन से पाई गई जो कब्र 'निया' नामक गाँव के पास मिली है, उस कब्र को खोदने पर लकड़ी का एक कटोरा पाया गया। उस कटोरे पर घड़ी के हाथों की विपरीत दिशा की ओर इंगित करता स्वस्ति का चिह्न नक्काशीदार तरीके से दिखता है। इसका अर्थ यह है कि स्वस्ति का चिह्न '卐' भी मध्य एशिया के मध्य-काल में प्रचलित एवं मान्य था।

इस 'निया' जगह से प्राप्त एक लकड़ी के छोटे दरवाजे पर की गई चित्रकारी में ठीक उसी प्रकार से भारतीय हाथियों को दर्शाया गया है, जिस प्रकार राजस्थान के नगरों एवं गाँवों में रहने वाले लोगों के प्रांगण में वर्तमान समय में हाथियों की चित्रकारी देखने को मिलती है।

ब्रिटेन के पुरातत्त्ववेत्ता सर ओरेल स्टेइन को 1900 शताब्दी के प्रारम्भ में खरोष्ठी लिपि में लिखे गए 'सैकड़ों काष्ठ पत्रक' भी मिले हैं। खरोष्ठी लिपि ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी की अरामिक मूल की भारतीय वर्णमाला है। ये पत्रक (प्रलेख) प्राय: प्राचीन सिल्क मार्ग के व्यापार में प्रयोग किए जाते थे।

नोट: 'आर्य तथा स्वस्ति' की विशुद्ध भावना को कुछ स्वार्थी लोगों ने तोड़-मरोड़ दिया है। आर्य तथा स्वस्ति के इन तोड़े-मरोड़े अर्थों का प्रयोग कुछ समूहों एवं देशों ने अपने स्वार्थ हेतु भी किया है। ये विशेष ग्रुप/समूह जर्मनी तथा अमेरिका के ऐरियन ग्रुप्स, स्कीन हेड्स, क्लूक्लाक्स क्लान' इत्यादि हैं। अब भी ये समूह इन पवित्र नामों तथा चिह्नों को बदनाम करते हैं।

परमात्मा करे इन ग्रुप/समूहों को आत्मज्ञान मिले, ताकि ये समझ पाएँ कि आर्य का अर्थ 'एक सभ्य, महान्, श्रेष्ठ व्यक्ति' और स्वस्ति का अर्थ 'शान्ति, उन्नति एवं समृद्धि' होता है. उत्सव अथवा शुभ अवसर के प्रारम्भ में सफलता और समृद्धि के स्वस्ति चिह्न '卐' अथवा '卐' विश्व के सम्पूर्ण हिन्दुओं द्वारा सर्वमान्य हैं।

प्रश्न-29. वह कौन-सा मंत्र, श्लोक, सूक्त अथवा वेद की ऋचा है, जो सभी हिन्दुओं द्वारा प्रार्थना रूप में बालक/बालिका को शिक्षा के प्रारम्भ में सिखाया जाता है ?

उत्तर : वेद का प्रसिद्ध मन्त्र अथवा ऋचा 'गायत्री मन्त्र' है जो कि प्रार्थना रूप में सभी समूहों द्वारा स्वीकृत है। 'गायत्री मन्त्र' नीचे दिया गया है:

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। —ऋ॰ 3.63.10; यजु॰ 36.3

परमेश्वर! आप प्राणस्वरूप, दु:खहर्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सुखस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि-रचयिता और सर्वपालक हैं। हम आपके शुद्ध विज्ञानमय, वरणीय, दिव्य ज्योति:स्वरूप का ध्यान करते हैं। आप कृपया हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

प्रश्न-30. अग्निहोत्र अथवा हवन क्या है ?

उत्तर : अग्निहोत्र अथवा हवन एक धार्मिक रीति है। इसको एक वैज्ञानिक प्रक्रिया भी कह सकते हैं। इसमें रोगनाशक, सुगन्धित, मिष्टगुणयुक्त और पुष्टिकारक पदार्थ, जैसे शुद्ध घी और विविध जड़ी-बूटियों के बने मिश्रण को, प्रभु का आह्वान करते हुए, मन को भक्ति-भाव से केन्द्रित करते हुए, अग्नि में डालते हैं। अग्नि इन पदार्थों के सूक्ष्म आन्तरिक कणों को वातावरण में वितरित कर देती है। इन आयुर्वेदिक पदार्थों के सुगन्धित और रोगनाशक गुण दूर-दूर तक हवा के साथ फैल जाते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर लाल मिर्च घर के किसी कोने में पड़ी रहे तो

उसका पता नहीं चलता, किन्तु थोड़ी-सी मिर्च अगर आग में डाल दी जाए तो पूरे वातावरण में मिर्च की गंध का प्रभाव तुरन्त फैल जाएगा, क्योंकि अग्नि ने मिर्च के गुण को अति सूक्ष्म करके दूर-दूर तक फैला दिया है। इसी प्रकार सुगन्धित, रोगनाशक और पोषक गुण वाले द्रव्यों को अग्नि में समर्पित करने से जल; वायु आदि की शुद्धि एवं रोगनिवारणता तथा पोषकता प्राप्त होती है। इन पदार्थों को अग्नि में समर्पित करने के साथ-साथ कुछ वैदिक मन्त्र बोले जाते हैं तथा समिदाधान, जलप्रोक्षण आदि विधि की जाती है, जिनके साथ बहुत-से मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक लाभ भी हैं। **यह सम्पूर्ण प्रक्रिया हवन, अग्निहोत्र या होम कही जाती है तथा महायज्ञ के अन्तर्गत समाविष्ट होती है।** इसके पूरे लाभ तथा प्रक्रिया जानने के लिए बहुत-सी पुस्तकें उपलब्ध हैं। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कैमिस्ट्री विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ॰ सत्यप्रकाश ने 'अग्निहोत्र में डाले जाने वाले पदार्थों का वातावरण पर क्या-क्या रासायनिक सुप्रभाव होता है' इसका विस्तृत विश्लेषण किया है तथा निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित किया है कि अग्निहोत्र की प्रक्रिया पर्यावरण तथा रोगनाशक गुणों से पूर्ण स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

विकास की आड़ में मानव को वातावरण का बलिदान नहीं करना चाहिए, बल्कि वातावरण के साथ सामंजस्य बिठाकर सुखी, स्वस्थ, यश एवं शान्तिमय जीवन जीना चाहिए—यही अग्निहोत्र अथवा हवन का सन्देश है।

वैदिक साहित्य में 'अग्नि' के बहुत-से अर्थ हैं। भौतिक अर्थ के अलावा आध्यात्मिक रूप से 'अग्नि' परमात्मा (अग्रे नयति, अग्रणी भवति, अग्रं प्रापयति इति वा) का नाम भी है। 'ओ३म्' का प्रथम स्वर 'अ' अग्नि के रूप को बताता है, जो कि स्वयं उज्ज्वल, देदीप्यमान, ज्योतिरूप, प्रकाशवान् है। पल-भर से भी कम समय में सब-कुछ जाननेवाला ही परमात्मा, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ

और दिव्य है। (ऋग्वेद 1.1.1, 1.24.1, 1.24.2, 8.44.23, 30.2.1, 1.164.46)।

अग्निहोत्र के दौरान प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के इन गुणों को याद कर स्वयं को इन गुणों से ओतप्रोत करने की कोशिश करता है। आध्यात्मिक रूप से अग्निहोत्र व्यक्ति को परमात्मा की अनुभूति के समीप लाने में सहायक होता है। अग्निहोत्र का धार्मिक अनुष्ठानों में बड़ा महत्त्व है। बगैर अग्निहोत्र के हिन्दू धर्म में कोई संस्कार पूर्ण नहीं हो सकता।

प्रश्न-31. यज्ञ और यज्ञशेष क्या हैं ?

उत्तर : धर्म की तरह, 'यज्ञ' संस्कृत शब्द है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद करना कठिन है। यज्ञ के अनेक अर्थ हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'**, जो निःस्वार्थ, रचनात्मक कार्य, समाज की समृद्धि के लिए सामूहिक रूप से अथवा स्वयं के सतत प्रयत्न द्वारा किया जाता है, उसे 'यज्ञ' कहते हैं। सतत परोपकारी कार्य के द्वारा ही सर्वव्यापक परमात्मा की सेवा होती है। **'यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** के अनुसार 'यज्ञ ही देव-पूजा, संगतिकरण, और दान है। **'अयं यज्ञस्तु भुवनस्य नाभिः'**—सम्पूर्ण ब्रह्मांड अथवा सृष्टि का केन्द्र यज्ञ है, अर्थात् यज्ञ पर सृष्टि आधारित है। **'यत्र यज्ञो तत्रैव जीवनम्'** यज्ञ ही जीवन है, कारण—निःस्वार्थ, रचनात्मक सामाजिक कार्य अगर न होगा तो समाज की समृद्धि नहीं हो सकती।

यज्ञ का भौतिक महत्त्व : अग्निहोत्र को भी यज्ञ से सम्बोधित करते हैं। जो पदार्थ अग्निहोत्र में डाला जाता है वह नष्ट नहीं होता, परन्तु प्रज्वलित अग्नि उसे सूक्ष्म रूप से सब जगह फैला देती है। अग्नि का काम ही स्थूल पदार्थ को सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में परिवर्तित कर देना है।

यज्ञ का व्यक्तिगत महत्त्व : यज्ञ का तात्पर्य देवपूजा, संगतिकरण व दान है। यज्ञ करते समय, सज्जन पुरुषों, साधु-संतों

की उपस्थिति -प्रवचन-संगति से मनुष्य सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होता है, इससे अपराध प्रवृत्ति कम होती है व सामाजिक सुधार होता है।

यज्ञ का सामाजिक महत्त्व : यज्ञ में दिए गए दान से, सामाजिक कार्य करनेवाली संस्थाएँ सुचारु रूप से चलती हैं। **बलिवैश्वदेव यज्ञ से समाज के निर्धन, भूखे, असहाय लोगों की देखभाल होती है, उन्हें सहारा मिलता है। आजकल जो भारतवर्ष में निर्धन, अशिक्षित, असहाय लोगों का बलात् व लोभ से धर्म-परिवर्तन हो रहा है, यदि प्रत्येक व्यक्ति बलिवैश्वदेव यज्ञ प्रतिदिन करे, अपना दैनिक सामाजिक सेवा का कर्तव्य पूर्ण करे, तो समाज में हो रहे इस अनैतिक धर्म-परिवर्तन को भलीभाँति सुगमता से रोका जा सकता है। इन समस्याओं का समाधान भी स्वतः ही प्रतिदिन बलिवैश्वदेव यज्ञ करने से हो सकता है।**

यज्ञ का आध्यात्मिक महत्त्व : यज्ञ में देवपूजा-ईश्वर की प्रार्थना, उपासना का भी बहुत महत्त्व है। उपासना (उप=पास, आसना अर्थात् बैठना) का अर्थ है ईश्वर के समीप बैठना। प्रतिदिन व्यक्ति जब 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव'—'हे ईश्वर! मेरे समस्त दुर्गुण व बुरी आदतें दूर कीजिए' व 'अग्ने नय सुपथा'—'हे प्रभो! आप हमें सन्मार्ग पर चलाइए' जैसी प्रार्थना करेगा, तो निश्चित ही व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति होगी, इसलिए यज्ञ का दैनिक जीवन में बहुत महत्त्व है।

यज्ञ शब्द का आंग्ल भाषा में जान-बूझकर दूषित अनुवाद 'Sacrifice' किया गया है, जिसका अर्थ 'कत्ल करना' अथवा 'पशु काटना' होता है। अगर हम इसी प्रकार से क्रिश्चियन रिलिजन के 'Holy Ghost' का अनुवाद 'पवित्र भूत-पिशाच' करें तो क्या क्रिश्चियन रिलिजन के अनुयाइयों को मान्य होगा ?

आंग्ल भाषा में यज्ञ का शुद्ध अनुवाद Benevolence होता है।

यज्ञशेष : किसी भी प्रकार का महत्त्वपूर्ण लाभ जो धार्मिक अनुष्ठान (religious ceremony) के पश्चात् बच जाता है, उसे 'यज्ञशेष' कहा जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने यज्ञशेष वितरण करने को ही वास्तविक समर्पण अथवा धर्म कहा है। यज्ञशेष-वितरण के विषय में एक ऐतिहासिक प्रसंग द्रष्टव्य है: सातवीं शताब्दी में चीनी दूत ह्वेनसांग ने जब भारतवर्ष की यात्रा की, तो उसने सम्राट हर्ष को यज्ञशेष के रूप में अपना सर्वस्व दान देते हुए देखा। सम्राट हर्ष प्रतिवर्ष इस प्रकार अपनी सारी सम्पत्ति यज्ञ-पश्चात् यज्ञशेष के रूप में विद्वानों को दान दिया करते थे।

सरल भाव में यज्ञ का अर्थ है 'मानवता की सेवा के लिए निःस्वार्थ कार्य एवं प्रयास'। सतत परोपकारी कार्य के द्वारा ही सर्वव्यापक परमात्मा की सच्ची सेवा होती है। इस निःस्वार्थ सतत प्रयास करने के पश्चात् भी जो परोपकार बच जाता है वह 'यज्ञ-शेष' कहलाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में 'इस यज्ञशेष' को भी प्रभु को समर्पित करने के लिए कहा है।

प्रश्न-32. अश्वमेध यज्ञ क्या है ?

उत्तर : इसको समझने के लिए सर्वप्रथम हमें 'अश्वमेध' शब्द का वास्तविक अर्थ जानना होगा। अश्वमेध शब्द में मूल शब्द 'अश' है। शतपथ ब्राह्मण (S.B. xiii 2.11.15.17) के अनुसार 'अश' (अशूङ् व्याप्तौ) शब्द का अर्थ 'सर्वव्यापक' होता है। 'अश' शब्द से अश्व शब्द निकला है। 'अश्व' शब्द उस परमात्मा का नाम है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। 'मेध' शब्द का अर्थ है—बाँटक। अतः अश्वमेध का अर्थ हुआ—प्रभु के साम्राज्य का अथवा परमात्मा की शक्ति का प्रत्येक व्यक्ति के हित हेतु उपयोग करना अर्थात् समाज में विस्तार करना। प्रजा द्वारा वह क्रियात्मक उदार प्रयास जो कि जनजीवन में समृद्धि लाता है 'अश्वमेध यज्ञ' कहलाता है।

'जब प्रजा राज्य के कार्यों में यज्ञ की भावना से भाग लेती है,

तब देश का सुयश चारों दिशाओं में फैल जाता है।' यही अश्वमेध यज्ञ का असली अर्थ है, न कि अश्वों को मारना है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, 411

प्रत्येक शब्द का उपयुक्त अर्थ करने से ही वाक्यार्थ का सही ज्ञान होता है। जैसे हिन्दी के 'बाल' शब्द का भारत के भिन्न-भिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ होता है, इसी तरह लोगों ने 'अश' के ऊपर लिखे संस्कृत के सन्दर्भ सहित सही अर्थ को उपयोग में न लेकर, अपितु हिन्दी के 'घोड़ा' शब्द से संस्कृत के मंत्रों/श्लोकों के अर्थ का अनर्थ कर दिया है। 'यज्ञ में घोड़े काटना' के दूषित अर्थ कर 'अश्वमेध यज्ञ' के प्रति निकृष्ट धारणा अथवा भ्रान्ति पैदा की है। यह केवल अज्ञान का ही द्योतक है। जो लोग सोचते हैं कि हवन/यज्ञ करते समय घोड़े की बलि देना ही 'अश्वमेध यज्ञ' कहलाता है, उनका यह निरा दूषित भ्रम ही है।

यहाँ पर यह बताना भी उपयुक्त है कि अन्त्येष्टि संस्कार, संस्कारों की श्रेणी में अन्तिम संस्कार है, इसको नरमेध या पुरुषमेध यज्ञ भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में 'नरमेध अथवा पुरुषमेध' शब्दों का अर्थ 'व्यक्ति को काटना' नहीं होता, परन्तु मृत्यु के बाद दाह संस्कार करना है। अंतिम संस्कार के लिए उत्तर 33 को भी देखें।

महान् ऋषि वेदव्यास ने भी महाभारत में 'अश्वमेध यज्ञ' की निम्न प्रकार से व्याख्या की है -

पृथिवी दक्षिणा चात्र विधिः प्रथमकल्पितः।
विद्वद्भिः परिदृष्टोऽयं शिष्टो विधिविपर्ययः॥

—महाभारत 14.11.30

'अश्वमेध यज्ञ में सारी भूमि समाज में आवंटित कर दी जाती है। सभी विद्वानों का यही मुख्य उद्देश्य है कि संसार में सभी धनधान्य से समृद्ध होवें।'

यही विधान अश्वमेध यज्ञ की भावना का प्रतीक है। श्रीराम

ने लोकतांत्रिक तरीके से शासन किया। उन्होंने अपने मंत्रिमंडल से और उनसे अलग सहयोगी जनों के साथ भी लोकतांत्रिक विषयों पर विचार-विमर्श किया और इस प्रकार की कार्य-प्रणाली को भी पूर्ण स्वीकृति दी। रावण का विनाश करने के पश्चात् उन्होंने अनेक क्षेत्र के राजा लोगों से मिलकर लोकतांत्रिक राज्य के सभी नागरिकों की उन्नति के लिए एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। इसी कारण थाई, चम्पा, कम्बोडिया इत्यादि देशों के बौद्ध लोग, इन्डोनेशिया के मुसलमान तथा भारत के लोग श्रीराम तथा उनके अश्वमेध यज्ञ पर अभी भी पूरी श्रद्धा रखते हैं, अतः हमारे द्वारा कम से कम अश्वमेध यज्ञ का सही अर्थ जानना और दूसरों को जनाना अत्यन्त आवश्यक है।

यथार्थ में 'अश्वमेध यज्ञ' का अर्थ प्रजा द्वारा राज्य में क्रियात्मक भाग लेना है, जिससे जनजीवन में समृद्धि हो। 'अश्वमेध यज्ञ' लोकतांत्रिक राज्य के सभी नागरिकों की उन्नति के लिए किया जाता है। इसे साधारण तौर पर Democratic अथवा प्रजातांत्रिक राज्य की संज्ञा दे सकते हैं।

अश्वमेध यज्ञ का एक और रूप प्राचीनकाल में प्रचलित था—चक्रवर्ती राजा अपनी प्रभुसत्ता की परख के लिए सभी दिशाओं में कुछ घुड़सैनिकों के साथ अश्व को सजाकर अपने राज्य के 'सांकेतिक चिह्न' अथवा Mascot के रूप में भेजते थे। जो भी इस अश्व को रोक/पकड़ लेता तो उसे challenge अथवा युद्ध के लिए ललकारना होता था। युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त कर अपनी प्रभुसत्ता पुनः स्थापित करने का यह अनुपम उपाय था। श्रीराम के द्वारा छोड़े गए अश्व को लव और कुश ने पकड़ लिया था—यह ऐतिहासिक प्रसंग सर्व-विदित है।

प्रश्न-33. हिन्दुओं में कितने धार्मिक अनुष्ठानों अथवा संस्कारों का विधान है ?

उत्तर : मनुष्य के जीवन में व्यक्तिगत उन्नति हेतु धार्मिक

अनुष्ठानों अथवा संस्कारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें सोलह संस्कार मुख्य हैं (मनु 2/2, 2/4, 2/5-8, 2/9, 2/35, 2/11-43, 2/44-224, 2/40, 3/1-3, 3/4-62, 3/67-286, 5/167, 6/1.32, 6/33-97, 12/82-125)।

व्यक्ति की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के लिए जो धार्मिक अनुष्ठान होते हैं, उन्हें संस्कारों के नाम से पुकारा गया है। जीवन की सार्वभौम उन्नति हेतु संस्कारों का विधान मनु ने बनाया।

जीवन के प्रत्येक मोड़ पर प्राप्त अस्तित्व की नई स्थिति को स्वयं, परिवार, समाज द्वारा अपनाने अथवा मान्यता प्राप्त करने या कराने के लिए जो धार्मिक सामाजिक अनुष्ठान किया जाए, उसे 'संस्कार' कहते हैं। जीवन की अभिवृद्धि करने में यह अद्वितीय 'व्यक्तिकरण संस्कार क्रिया' व्यक्तित्व के विकास एवं समृद्धि में सहायक सिद्ध होती है। 'संस्कार' मनुष्य को सार्वभौम विकास के लिए तैयार करता है। जीवन के शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक पहलुओं का बढ़ावा संस्कार देता है। अनुष्ठान जीवन के प्रारम्भ से जीवन के अन्त तक व्यक्ति की भूमिका का समाज में मार्ग निर्धारित करते हैं। संस्कार-विधि को पूर्ण करने में अग्निहोत्र अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और प्रत्येक संस्कार मनुष्य को अगले पड़ाव के लिए तैयार करता है।

संस्कारों का महत्त्व :

संस्कार की परिभाषा देते हुए चरक ऋषि ने कहा है **'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'** अर्थात् संस्कार विद्यमान दुर्गुणों को हटा कर उसकी जगह सद्गुणों को विकसित कर देने का नाम है। जन्म के समय मानव दो प्रकार के संस्कार साथ लेकर आता है--प्रथम प्रकार के वे, जो जन्म-जन्मान्तरों से साथ लाता है, एवं दूसरे प्रकार

के वे संस्कार जो वंश-परम्परा (माता-पिता) से प्राप्त करता है। धीरे-धीरे जब बड़ा होता है, तब वातावरण से भी बहुत सीखता है। इस प्रकार ये संस्कार अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जीवन में सोलह बार मानव को बदलने का, उसके नव-निर्माण का प्रयत्न संस्कारों द्वारा किया जाता है। व्यक्ति-निर्माण की वास्तविक योजना संस्कारों द्वारा ही पूरी की जा सकती है। ये सोलह संस्कार निम्न हैं :

1. गर्भाधान/सृजन संस्कार : गर्भावस्था की मान्यता ही सृजन संस्कार है। विवाह उत्सव के पश्चात् स्त्री द्वारा गर्भ धारण होने की प्रारम्भिक अवस्था को मान्यता देने हेतु जो धार्मिक अनुष्ठान किया जाए, उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं। इसका 'सृजन संस्कार' अति उपयुक्त नाम है।

2. पुंसवन : गर्भावस्था के दूसरे या तीसरे महीने में भ्रूण को मान्यता देने तथा शारीरिक विकास के लिए जो धार्मिक आयोजन किया जाए, उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।

3. सीमन्तोन्नयन : गर्भ में बच्चे के मस्तिष्क का विकास तथा शुभजन्म के लिए परमात्मा से आशीर्वाद माँगने हेतु जो धार्मिक अनुष्ठान किया जाए, उसे सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार प्राय: गर्भावस्था के चौथे महीने के बाद किया जाता है। इसी प्रकार की व्यवस्था पश्चिम में भी मिलती है, उसे 'Ladies Shower' (लेडीज शॉवर) कहते हैं। परिवारिक महिलाएँ एवं सहेलियाँ इकट्ठी होकर इस समारोह में गर्भवती स्त्री अर्थात् भावी माँ को बधाई, नये बच्चे के और उसके स्वयं के भी सुन्दर वस्त्र तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भेंट करती हैं। इससे भावी माँ को ढाढस मिलता है, झिझक समाप्त होती है, मानसिक सान्त्वना प्राप्त होती है, उसे अपनी गर्भावस्था पर गर्व होने लगता है। अपनी वर्तमान यथास्थिति का भान होने से वह आसानी से अपनी जिम्मेदारियों को झेल सकती है और अगली स्थिति 'माँ बनने' के लिए वह

स्वयं अपने-आपको तैयार करने की क्षमता विकसित करती है।

4. जातकर्म : नवजात शिशु की एक नये व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान करना ही जातकर्म संस्कार कहलाता है, न कि जाति प्रदान करना। शिशु के जन्म के समय किए जाने वाले सुसंस्कृत कार्यों को जातकर्म कहते हैं।

5. नामकरण : जन्म के ग्यारहवें या बारहवें दिन, अथवा उससे पहले बच्चे का नाम रखने के उत्सव को नामकरण संस्कार कहते हैं। नाम सुन्दर, मृदु व सार्थक होने से बच्चे का मनोबल बढ़ता है।

6. निष्क्रमण : बच्चे को घर से बाहर शुद्ध वायु सेवन के लिए ले-जाने हेतु परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करने के उत्सव को ही निष्क्रमण संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार तब किया जाता है, जब बच्चा 2 4 महीने का हो जाता है।

7. अन्नप्राशन : चार से छः महीने के बच्चे के जब दाँत आने लगते हैं, तब बच्चे को पहली बार अन्न प्रदान कराया जाता है, उसे अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। इस अवसर पर बच्चे को खूब पके हुए चावल की खीर भी खिलाई जाती है।

8. चूड़ाकर्म अथवा मुण्डन : पहले वर्ष की समाप्ति से पूर्व या तीसरे वर्ष में अथवा उसके बाद, बच्चे को शरीर ज्ञान का बोध कराने हेतु चूड़ाकर्म संस्कार करते हैं। जन्म के जो केश अब तक बढ़ रहे थे, उन्हें सुसज्जित और सुसंस्कृत करना ही चूड़ाकर्म संस्कार कहलाता है। **समाज द्वारा बच्चे को बालक अथवा बालिका के रूप में ग्रहण करना मुण्डन संस्कार का प्रमुख लक्ष्य है।**

9. कर्णवेध : बच्चे में आत्मसम्मान की जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए कर्णवेध संस्कार किया जाता है। यह जिम्मेदारी को बढ़ाता है। बालक अथवा बालिका जब प्रायः 3 से 5 वर्ष का होता है, तब कर्णवेध संस्कार किया जाता है।

10. उपनयन अथवा यज्ञोपवीत संस्कार : उपनयन का अर्थ

है उप=निकट, नयन=ले जाना। किसके निकट? जो बालक अथवा बालिकाओं पर नयन रखें अर्थात् उनकी देखरेख कर सकें! वे कौन हैं? गुरु अथवा अध्यापक! किसलिए ले-जाए-विद्यारम्भ के हेतु! बालक अथवा बालिकाओं के लिए उपनयन संस्कार शिक्षा मन्दिर में प्रवेश करने का द्वार है। यह संस्कार प्राय: 5 वर्ष की आयु में किया जाता है। अत: माता-पिता से अलग होने तथा विद्यारम्भ के नूतन वातावरण में जाने की चिन्ता को दूर करने के लिए उपनयन संस्कार एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। उपनयन संस्कार से बालक अथवा बालिकाओं की 'द्विज' संज्ञा पड़ती है। द्विज का अर्थ है दूसरी बार जन्म लेना। एक बार जन्म माता-पिता के यहाँ हुआ और दूसरा जन्म गुरु के यहाँ होगा जब बच्चे को आचार्य अपने गर्भ (संरक्षण) में धारण करके उसे सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व लेता है।

तुलनात्मक अध्ययन : यज्ञोपवीत का महत्त्व इतना है कि यज्ञोपवीत संस्कार वैदिक धर्म से अन्य धर्मों, मज़हबों, रिलिजन इत्यादि के माननेवालों ने भी किसी न किसी रूप से अपने-अपने ढंग से अपनाया है।

पारसी लोग—पारसी लोगों का उद्भव आर्यों से हुआ है। यज्ञोपवीत को पारसी लोग 'कुस्ती' कहते हैं। पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय ने Fountainhead of Religion, पृष्ठ 87 में इस सन्दर्भ में लिखा है : पारसियों के पैगम्बर जरथुस्थ्र को पारसियों के भगवान् अहुरमज्दा ने कहा है कि जो 'कुस्ती'=यज्ञोपवीत को धारण नहीं करता, उसे मृत्यु-दंड दिया जाना चाहिए! पारसियों के यहाँ 'कुस्ती' बालक को सात वर्ष में दी जाती है एवं वह इसे कमर के चारों तरफ लपेटता है। यह उनका एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। पारसियों के 'कुस्ती' और यज्ञोपवीत-धारण के वैदिक मंत्र समान अर्थ वाले हैं। **वैदिक मंत्र** :

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

—पारस्कर गृह्य सूत्र 2/2/11

अर्थ : यज्ञोपवीत परम पवित्र है, आदि-काल से यह प्रजापति के साथ रहा है, यह आयु व बल को देनेवाला है।

पारसियों का 'कुस्ती' यज्ञोपवीत-धारण मंत्र—

'फ्राते मज्दाओ वरत् पौरवनीयम्
एयाओं धनिमस्ते हर पाये संधेम,
मैन्युतस्तेम् वंधुहिम् दयेनीम् मज्दवास्नाम्'

अर्थ : हे डोरा, तू बहुत बड़ा उज्ज्वल है, व बल देनेवाला है, तुझे मज्दा ने आरोहित किया है, मैं तुझे पहनता हूँ।

यह संस्कार पारसियों में अभी तक प्रचलित है।

इस्लाम में उपनयन जैसे संस्कार को 'बिस्मिल्ला पढ़ना' कहते हैं। 'बिस्मिल्ला' सुनाकर ही बालक को पढ़ने बैठाया जाता है, परन्तु आजकल इस्लाम में किसी को भी 'बिस्मिल्ला' सुनाकर मुसलमान ही बनाते हैं।

क्रिश्चियन रिलिजन में इसे बच्चे का 'बेप्टिज्म' कहते हैं। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन के अनुसार 'बेप्टिज्म' यूनानी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'पुनरुत्पत्ति, Regeneration'; यही 'पुनरुत्पत्ति' ऊपर कहे 'द्विज' शब्द से प्रकट होती है। 'द्विज' उसी को कहते हैं जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो, परन्तु आजकल किसी को भी 'बेप्टिज्म' करके उसे क्रिश्चियन रिलिजन में प्रविष्ट करा लेते हैं।

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र=धागे होते हैं, जो क्रमशः तीन ऋणों से उऋण होने की याद दिलाते रहते हैं। ये तीन ऋण हैं—1. **देव ऋण :** जिस देवाधिदेव परमेश्वर ने हमें जीवन प्रदान किया है उसके हम ऋणी हैं। ईश-आराधना/स्मरण/उपासना, दैनिक पंच यज्ञ करते हुए, चारों आश्रम—ब्रह्मचर्य गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास

को निभाते हुए, समाज-कल्याण करके इससे उऋण हो सकते हैं। 2. **पितृ ऋण :** माता-पिता द्वारा जन्म, पालन-पोषण, शिक्षा आदि का जो ऋण है, उससे उऋण होने की यज्ञोपवीत याद दिलाता है। माता-पिता की सेवा और सन्तानों को शिक्षित कर सुयोग्य बनाकर हम इससे उऋण हो सकते हैं। 3. **ऋषि ऋण :** अर्थात् **आचार्य-ऋण :** जिन ऋषि-मुनियों ने, आचार्यों ने हमें ज्ञान-विज्ञान से परिचित करवाया है, उनके ऋण से हम तभी उऋण हो सकते हैं, जब हम भी औरों को ज्ञान प्राप्त करावें।

हर समय धारण किया जाने वाला यज्ञोपवीत, मनुष्य को सदैव मानसिक रूप से इन तीन ऋणों का स्मरण कराते रहने का एक सुगम मनोवैज्ञानिक साधन है।

11. वेदारम्भ : इस संस्कार से बच्चे में पाठशाला अथवा गुरुकुल जाने की उत्सुकता उत्पन्न होती और अनजानी जगह जाने का डर दूर होता है। शिक्षा की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए किया गया संस्कार वेदारम्भ संस्कार है। जब बच्चे की आयु पाँच वर्ष की हो जाती है, तब शिक्षा देने हेतु यह संस्कार किया जाता है।

12. समावर्तन : शिक्षा-समाप्ति पर युवक अथवा युवती को योग्य व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर, उसे समाज का अभिन्न अंग मानने के उत्सव को समावर्तन संस्कार कहते हैं। यह अध्ययन के बाद जीवन के अगले पड़ाव की तैयारी के रूप में किया जाता है। यह आधुनिक काल में हर विश्वविद्यालय द्वारा दीक्षान्त समारोह (Convocation) के रूप में मनाया जाता है।

13. विवाह : जीवन-साथी चुनकर गृहस्थ-जीवन अथवा पारिवारिक जीवन प्रारम्भ करने के लिए जो संस्कार किया जाता है, वह विवाह-संस्कार कहलाता है। वयस्क होने पर प्रायः युवक के 25 वर्ष पूर्ण करने और युवती के न्यूनतम 18 वर्ष पूर्ण करने पर स्वयंवर विवाह करने से गृहस्थ आश्रम आरम्भ होता है।

14. वानप्रस्थ आश्रम : सभी इच्छाओं अथवा काम और धन

कमाने की इच्छाओं की तृप्ति होने के बाद, जीवन की संतुष्टि पाने के लिए आगे बढ़ना ही वानप्रस्थ आश्रम कहलाता है। वानप्रस्थ आश्रम जीवन के उस स्तर का नाम है, जिसे प्राय: 50 से 75 वर्ष की आयु में प्राप्त किया जाता है। धन कमाने से अवकाश प्राप्त कर, भविष्य की योजना को कार्यान्वित करना ही वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य कार्य है। यह अवस्था अपने किए हुए कार्यों पर चिन्तन करने तथा जीवन के उद्देश्यों पर पुनर्विचार करने के लिए होती है। वानप्रस्थ आश्रम मनुष्य को अगली अवस्था संन्यास आश्रम के लिए तैयार करता है।

15. संन्यास आश्रम : संन्यास आश्रम का मुख्य उद्देश्य मानव जाति की नि:स्वार्थ सेवा है। संन्यास आश्रम एक आध्यात्मिक मार्ग प्रस्तुत करता है। जब कोई व्यक्ति अपना जीवन बिना किसी व्यक्तिगत लाभ की इच्छा से समाज के उत्थान के लिए लगाता है, तब मानो उसने संन्यास आश्रम में प्रवेश ले लिया है। संन्यासी प्राय: गेरुवा वस्त्र पहनता है, जो मानवता की नि:स्वार्थ सेवा का प्रतीक होता है। गेरुवा रंग अग्नि का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करता है, दूसरे शब्दों में संन्यासी समाज के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित करने को तत्पर रहता है। इस प्रकार संन्यासी समाज की नि:स्वार्थ सेवा में अपने-आपको समर्पित करता है। कोई भी व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे संन्यास आश्रम में आ सकता है। किन्तु ऐसा उन्हीं को करना उचित है, जिन्हें तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया है। वैराग्य भाव को प्राप्त हुए बिना सामान्यत: ऐसा नहीं करना चाहिए। यह अवस्था प्राय: 75 वर्ष के बाद की होती है। वैदिक समाज का ध्वज भी भगवा रंग का है। यह भगवा रंग समाज की नि:स्वार्थ सेवा का द्योतक है, परोपकारी कार्यों के प्रति अपने-आपको समर्पण करने का प्रतीक है।

आजकल जो वृद्धाश्रम खोले जाते हैं उनकी प्राचीन काल में आवश्यकता नहीं होती थी, क्योंकि संन्यासी बनने पर मनुष्य परोपकार में लग जाता था व समाज उसकी देखभाल करता था।

संन्यास का अर्थ है सम्+न्यास अर्थात् मनुष्य के मन में मोह-ममता, वासनाओं और इच्छाओं का जो बोझ है, उससे पूर्ण रूप से अलग हो जाना। 'संन्यास' का अर्थ आजकल यह समझा जाता है कि मनुष्य सब काम छोड़कर बैठ जाए—यह केवल भ्रांति ही है। हमारा देश ऐसे कर्म-हीन/दिखावटी संन्यासियों से भरा पड़ा है, तभी तो समाज की उन्नति न होकर धर्म-हीन होने से अशिक्षा और अधार्मिक प्रवृत्ति के पनपने के कारण अराष्ट्रीय और अमानवीय तरीकों से धर्मान्तरण दूसरे मज़हबों और रिलिजन में बहुतायत से खुले आम हो रहा है। इससे अराष्ट्रीय गतिविधियों बढ़कर अमानवीय प्रवृत्ति से देश-द्रोह, लूट-खसोट और मारामारी होती है। संन्यास का तात्पर्य वस्त्र रँगा लेने से नहीं है। संन्यास बाहर का नहीं, भीतर का चिह्न है। संन्यास घर-बार छोड़ने का नाम नहीं, राग-द्वेष त्यागने का नाम है। यह त्याग मनुष्य समाज-सेवा के लिए करता है। संन्यासी तो विश्व का नागरिक हो जाता है। उसके लिए सब अपने हैं और वह सब का होता है।

प्राचीन काल में वानप्रस्थियों और संन्यासियों के सहारे ही सम्पूर्ण भारतवर्ष में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रचार पूरे देश में होता था।

संस्कार तथा आश्रम

गर्भावस्था में संस्कार 1-3	ब्रह्मचर्य आश्रम में संस्कार 5-12	गृहस्थ आश्रम आरम्भ	वानप्रस्थ आश्रम आरम्भ	संन्यास आश्रम आरम्भ	पुरुषमेध, नरमेध संस्कार
↓ जन्म संस्कार 4 जातकर्म		↓ विवाह संस्कार 13	↓ संस्कार 14	↓ संस्कार 15	↓ अन्त्येष्टि संस्कार 16 अन्तिम संस्कार

16. अन्त्येष्टि संस्कार : यह अन्तिम संस्कार है। जब पार्थिव शरीर से आत्मा निकल जाती है, तब शेष भौतिक शरीर का अग्नि-दाह कर दिया जाता है, इसको **पुरुषमेध, नरमेध, या अन्त्येष्टि संस्कार कहते हैं।** इस संस्कार में शारीरिक तत्त्व अग्नि द्वारा प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। शरीर के मुख्य पाँच तत्त्व-पृथिवी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पुनः अग्नि द्वारा प्रकृति के मुख्य पाँच तत्त्वों में मिल जाते हैं।

संस्कारों का व्यावहारिक महत्त्व : यदि कोई व्यक्ति न तो शिक्षित बनता है और न ही ब्रह्मचर्य आश्रम की मर्यादाओं के अनुसार चलता है अर्थात् सीखने की आकांक्षा नहीं रखता और न ही शिक्षा पूरी करता है, तब यह समझना चाहिए कि उसनेअपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है। उसने स्वयं को सही जीवन जीने के लिए तैयार नहीं किया है। तब वह व्यक्ति कैसे समाज-सेवा की जिम्मेदारी उठा सकता है? संस्कारहीनता के कारण ही बाल-अपराध, पारिवारिक कलह, गुप्त रोग सम्बन्धी बीमारियों का फैलाव, अल्पवयस्क आयु में गर्भ धारण करना, बाल-मृत्युदर में बढ़ोत्तरी, पारिवारिक विघटन, धोखाधड़ी और अन्य आपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है।

संस्कार वे सामुदायिक प्रथाएँ हैं जो एक व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा करने की प्रवृत्ति को जागृत कर, नूतन सामाजिक अस्तित्व प्रदान करती हैं। इस प्रकार संस्कार एक ऐसा अनुष्ठान है, जो नौजवान व्यक्ति को समाज का महत्त्वपूर्ण परिपक्व अंग बनने के योग्य बनाता है।

संस्कार जीवन के वे महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं, जो किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक चिंताओं को कम करते हुए जीवन को सामाजिक सहयोग से आगे बढ़ाते हैं। सामंजस्य के गुण पनपने से व्यक्ति समाज में जीने की कला सीखता है। अन्ततः संस्कारों से मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। समाज-शास्त्रियों ने प्रमाणित किया है कि जिस राष्ट्र

ने अपने नवयुवकों को संस्कारों से तैयार नहीं किया है, उन राष्ट्रों की संस्कृति नष्ट हो जाती है।

प्रश्न-34. आश्रम क्या है ? आश्रमी व्यक्ति को जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए ?

उत्तर : महान् विधिवेत्ता मनु ने भी सभी प्राकृतिक नियमों को एक पुस्तक में विधिवत् ढंग से संगृहीत किया है। कालांतर में यही पुस्तक 'मनुस्मृति' के नाम से प्रसिद्ध हुई। मनुस्मृति जीवन जीने के ढंग का उल्लेख करती है। मनु ने मानव-जीवन को चार भागों अथवा आश्रमों में बाँटा है। चारों आश्रमों का निम्न रूप है :

1. ब्रह्मचर्याश्रम : जन्म से न्यूनतम 25 वर्ष तक की आयु का विवाह करने के पूर्व का समय ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। जीवन के इस प्रथम आश्रम में मानव बल, बुद्धि, और विद्या प्राप्त कर अपने-आपको जीविकोपार्जन हेतु तैयार करता है।

2. गृहस्थाश्रम : जीवन का दूसरा भाग विवाह करने के बाद गृहस्थाश्रम कहलाता है। यह आश्रम प्राय: 25 से 50 वर्ष तक की आयु का है। इस आश्रम में बुद्धि, बल और विद्या-प्राप्ति के साथ-साथ परिवार का पालन-पोषण, समाज-सेवा तथा जीविकोपार्जन करना मुख्य कार्य है। गृहस्थाश्रम से ही सम्पूर्ण समाज चलता है।

3. वानप्रस्थाश्रम : जीवन का तीसरा भाग वानप्रस्थाश्रम कहलाता है। यह आश्रम 50 से 75 वर्ष तक की आयु का है। वानप्रस्थाश्रम में जीवन की उपलब्धियों का विश्लेषण करना ही मुख्य कार्य है। जीविकोपार्जन अथवा सेवानिवृत्ति के समय जीवन के उद्देश्यों को पुन: टटोलकर अपना योगदान समाज-सेवा में देना है।

4. संन्यासाश्रम : जीवन का चौथा और अंतिम भाग संन्यास आश्रम कहलाता है। यह आश्रम 75 से 100 वर्ष या उससे भी अधिक की आयु का है। इस आश्रम का ध्येय है—मानव-सेवा।

अब तक जो कुछ भी अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया है, उसे निःस्वार्थ भाव से संसार की भलाई के लिए प्रदान करना है। संन्यास आश्रम का मुख्य उद्देश्य मानवता की निःस्वार्थ सेवा है।

जीवन की यात्रा का प्रथम चरण ब्रह्मचर्य आश्रम है। जिस व्यक्ति ने स्वयं ही 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है, वह अपने अल्पवयस्क बच्चों को कैसे सहारा देगा? कारण– वह स्वयं अल्पवयस्क है। अगर अल्पवयस्क बच्चे माता-पिता बनते हैं, तो वे अपने बच्चों का पालन-पोषण नहीं कर सकते। कारण–वे स्वयं ही जीविकोपार्जन करने में असमर्थ हैं, अतः वे अपराध को ही बढ़ावा देते हैं। अल्पवयस्क माता-पिता की सन्तानें अच्छी तरह से जीवन-यापन नहीं कर पातीं, क्योंकि वे शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पहले से ही पिछड़ी हुई हैं। इससे पारिवारिक और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह स्थिति समाज और देश की उन्नति में रुकावट के साथ-साथ सामाजिक अस्थिरता को जन्म देकर राष्ट्र का विघटन भी करती है।

स्वावलम्बी बनने हेतु ब्रह्मचर्य आश्रम आवश्यक है। गृहस्थाश्रम में रहकर ही तप, त्याग, इद्रिय-संयम का अभ्यास हर कोई आसानी से कर सकता है। जो मोक्ष और संसार को सुख देने की इच्छा करता हो, वह गृहस्थाश्रम में अवश्य प्रवेश करे। श्रीराम, श्रीकृष्ण, तथा अनेक ऋषि-मुनियों ने अनासक्त भाव से गृहस्थ-सुखों को भोगकर मुक्ति प्राप्त की थी। –स्वामी दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश।

महान् विद्वान् कालिदास ने कितने सुन्दर एवं संक्षिप्त रूप में जीवन जीने की कला का उल्लेख किया है–

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

–रघुवंश, 1.8

बचपन में विद्या अध्ययन, युवावस्था में विषयों के सन्तुलित

उपभोग द्वारा ऐन्द्रिक आनन्द, वृद्धावस्था में ऋषि की भाँति सौम्य शान्त होकर, वासनाओं का त्याग करके जियें और वृद्धावस्था के अन्त में एक योगी की भाँति शरीर को त्यागें।

प्रश्न-35. वर्ण क्या है ?

उत्तर : महान् विद्वान् मनु ने सुख, शान्ति और समृद्धि के लिए समाज को चार वर्गों में विभक्त किया है (मनु 1.31)। **प्रत्येक के मानसिक स्तर, कर्म-इच्छाएँ, सहजगुण, रुचियाँ, एवं स्वैच्छिक कार्य-क्षमता को ध्यान में रखकर ही वर्ण-व्यवस्था को बनाया है। वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं, अपितु कार्यक्षमता से ही बनाई गई है। ये वर्ग ही वर्ण के नाम से जाने जाते हैं।** विद्वानों ने देखा कि समाज में होनेवाले दु:खों का कारण 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' हैं। ब्राह्मण-वर्ण का कर्म अज्ञान का नाश करते हुए सत् ज्ञान का प्रसार करना, क्षत्रिय वर्ण का काम अन्याय न होने देना, वाणिज्य द्वारा समाज में किसी वस्तु का अभाव न होने देना वैश्य वर्ण का कार्य, तथा श्रमजीवी श्रद्धावान् शूद्र वर्ण द्वारा यथाशक्ति कार्य करना है, अत: समाज में 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' को दूर करने में लोग संलग्न मिलते हैं। इनका कर्म-विभाजन यह है :

ब्राह्मण : समाज का प्रबुद्ध वर्ग मुख्यत: परमात्मा की उपासना सम्बन्धी गतिविधियों से संलग्न है। जो धर्म-पुस्तकों के पठन-पाठन द्वारा शिक्षा का विस्तार करके समाज को उन्नति का मार्ग दिखाता है, वही केवल ब्राह्मण कहलाता है। 'धर्म प्रचारक', 'धर्म द्रष्टा' और बुद्धिजीवी लोग जो समाज से अज्ञान को दूर करते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

क्षत्रिय : समाज-रक्षक और शासक-वर्ग-रक्षण और सुरक्षा करनेवाले वीरगण, क्षत्रिय वर्ण के हैं। इस वर्ग का मुख्य कार्य समाज को नियन्त्रित करके, राज्य-प्रबन्ध एवं सुरक्षा प्रदान करना है। जो 'धर्म रक्षक' और 'धर्म योद्धा' लोग समाज को अन्याय से मुक्त कराते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

वैश्य : समाज के व्यापारी-वर्ग को वैश्य वर्ण कहते हैं। मुख्यत: व्यापारी, किसान, विक्रेता और जो उत्पादन, निर्माण, वितरण एवं अन्य व्यापार-सम्बन्धित गतिविधियों में संलग्न हैं, इस वर्ग का निर्माण करते हैं। 'धर्म पोषक' व्यापारी लोग जो समाज से वित्तीय अभाव को दूर करते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

शूद्र : समाज का मुख्य अंग जो सेवा-क्षेत्र से सम्बन्धित है, इस क्षेत्र से ही समाज को स्थिरता प्राप्त होती है। शूद्र-वर्ग में वे लोग आते हैं जिनकी रुचि मुख्य रूप से शारीरिक कार्य करने की है। चाहे वे कुशल कारीगर हों या सामान्य मजदूर, जैसे किसी सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले-जाना होता है, तथा अनेक मिले-जुले सेवा-कार्य इस वर्ग के कार्य-क्षेत्र हैं। श्रमजीवी श्रद्धावान् भाँति-भाँति से 'मानव-सेवा' कर जीवन-निर्वाह करनेवाले 'धर्म-निष्ठ' अथवा 'धर्म-पालक' श्रमिक लोग जो समाज की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में संलग्न हैं अथवा समाज-सेवा करते हैं, वे इस वर्ग में आते हैं।

समाज के चारों वर्ण 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' को दूर करने अथवा सेवा करने में संलग्न हैं। इनमें न कोई छोटा है और न ही कोई बड़ा।

प्रश्न-36. क्या वर्णों के भेदभाव हिन्दू धर्म पर आधारित हैं ?

उत्तर : मानव-समुदाय में भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। सभी वर्ग समाज के आवश्यक अंग हैं; न कोई उच्च है और न कोई वर्ग निम्न है। जात-पात के भेदभाव को हिन्दू धर्म के किसी भी प्रामाणिक ग्रंथ में मान्यता नहीं है और न ही इसका उल्लेख है। भेदभाव की गलत प्रथा ने मानसिक तौर पर एक ऐसी आंतरिक स्थिति पैदा कर दी जिससे लोगों पर भ्रष्ट शासन और बलात् धर्म-परिवर्तन करना और भी आसान हो गया है। वेदों का वचन है :

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय।।
—यजुर्वेद 26.2

परमात्मा का उपदेश है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आर्यजन, अन्त्यज आदि सब मनुष्य-मात्र के लिए वेदों का उपदेश करता हूँ' वैसे विद्वानो तुम भी करो। **इस मंत्र में ब्राह्मण वर्ग को शूद्र-वर्ग के बाद दर्शाया है, इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म में न तो कोई वर्ग बड़ा है, न ही कोई एक वर्ग दूसरे से श्रेष्ठ है और न ही कोई निकृष्ट अथवा छोटा है, अपितु सभी वर्ग समान हैं।** चारों वर्णों को *शतपथ* आदेश देता है : **एहीति ब्राह्मणस्यागह्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य।।** (शतपथकां॰ 1, प्र॰ 1, अ॰ 1, ब्रा॰ 4, कं॰ 12) चारों वर्ण वेदमन्त्रों से यज्ञ की हविः को शुद्ध करें। *आपस्तम्बीय श्रौतसूत्र* में भी लिखा है—**'हविष्कृदेहीति ब्राह्मणस्य हविष्कृदागहीति राजन्यस्य हविष्कृदाद्रवेति वैश्यस्य हविष्कृदाधावेति शूद्रस्य प्रथमं वाव सर्वेषाम्।।** (आपस्तंब श्रौ॰सू॰ प्र॰ 1, कं॰ 1,9) यज्ञ के विधान में पूर्वोक्त पृथक्-पृथक् मंत्रों से चारों वर्ण हविः शुद्ध करें।

—युधिष्ठिर मीमांसक, पुरुषार्थ-प्रकाशः, 1988 ई॰

प्रत्येक वेदमन्त्र के समाजपरक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ होते हैं।

स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
—यजुर्वेद 25.1

उपर्युक्त मंत्र के समाजपरक भाव इस प्रकार हैं—वृद्धश्रवाः इन्द्रः का अर्थ बलशाली क्षत्रिय, पूषा का अर्थ प्रजा का धन-धान्य से पोषण करनेवाला वैश्य, भव-सागर की नौका को खेनेवाले तार्क्ष्य का अर्थ शूद्र, बृहस्पति का अर्थ समाज का ध्यान करने वाला ब्राह्मण। अतः मन्त्र का अर्थ हुआ 'समाज के चारों वर्ण

हमारा कल्याण करें।'

आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थ—वृद्धश्रवा:=विद्युत्; पूषा=सूर्य; तार्क्ष्य=सर्वत्र गतिशील; बृहस्पति=ब्रह्माण्ड का पालक—ये सब आधिदैविक शक्तियाँ हमारा कल्याण करें। (व्याख्याकार, डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्कार चन्द्रिका, 1990)।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूभ्यां राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत॥

—यजुर्वेद 31.11

समाज का वह भाग जिसमें ज्ञान देने की योग्यता एवं इच्छा शक्ति है, ब्राह्मण कहलाएँगे; जो अपने बाजुओं की शक्ति से समाज की सुरक्षा करते हैं, क्षत्रिय कहलाएँगे; जो समाज की समृद्धि के मुख्य रक्षक हैं, वैश्य कहलाएँगे; और शूद्र वे हैं जिनकी कार्यशक्ति से समाज के पैर आगे बढ़ें, जो पूरे समाज की स्थिरता की धुरी हैं।

निरुक्त के अनुसार **'वर्णो वृणोते'** अर्थात् जिसे व्यक्ति स्वयोग्यता, रुचि व स्वभाव-अनुसार वरण करता है, अपनाता है, वह उसका वर्ण कहलाता है (2.1.40) अर्थात् जिसका वरण किया जाए, या जो कुछ स्वीकार किया जाए, लागू किया जाए तथा प्रयोग में लाया जाए, वही वर्ण है। अत: 'वर्ण' का जन्म से होने का प्रश्न ही उत्पन्न ही नहीं होता। उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि **'वर्ण' का सम्बन्ध जन्म से बिल्कुल नहीं है, अपितु 'वर्ण' का सम्बन्ध व्यक्ति की प्रवृत्ति से है, जिसे स्वार्थवश लोगों ने भ्रमित ढंग से जाति और प्रथा के रूप में चित्रित किया है।** मनु ने समाज की भलाई के लिए, समाज को वर्गों में सुव्यवस्थित किया, लेकिन पिछली सहस्राब्दि के दौरान यह 'वर्ण-व्यवस्था' पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई। यह एक अति महत्त्वपूर्ण सचाई है कि हिन्दू-समाज विदेशी-बल और विचारधारा के अधीन निरन्तर गुलामों की तरह दबा ही रह गया। वेद में प्रभु कहते हैं **'सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः'** (अथर्ववेद 3/30/1) सबको समान

हृदय से, परस्पर प्रीति, द्वेषरहित जीवन-यापन करनेवाला बनाया है। अत: वास्तविकता यह है कि सभी 'वर्ण' बराबर हैं और समाज को बनाए रखने में समान रूप से सभी का योगदान आवश्यक है।

विधि की विडम्बना है कि कुछ स्वार्थी राजनैतिक हिन्दू नेता वोट लेने हेतु, तथा स्वयं को गुरु कहलानेवाले भगवा कपड़े पहन लोग अपना श्रेय बढ़ाने हेतु समाज में व्याप्त छुआछूत को बढ़ावा देकर समाज का विघटन कराते हैं।

श्रीराम ने अपने नाम के पीछे जाति नहीं लगाई; ब्राह्मण होते हुए भी रावण ने अपने नाम के पीछे 'पंडा' नहीं लगाया; श्रीकृष्ण यादव होते हुए भी 'कृष्ण यादव' नहीं कहलाए। अत: नाम के पीछे जाति लगाना भी समाज को दूषित करने का एक प्रयास है। गोत्र तो सभी वर्गों में सार्वभौम है।

समाज के इस वर्गीकरण के कारण ही हिन्दू समाज विदेशी गुलामी के दौरान अति कष्टदायक समय को झेलते हुए भी जीवित रहा। परन्तु कोई भी प्रामाणिक आर्ष/वैदिक ग्रंथ आज के समाज में व्याप्त कुरीति 'छुआछूत' का समर्थन नहीं करता क्योंकि सभी 'वर्ण' समान हैं।

(प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों की सूची 'हिन्दू धर्म की झलकियाँ' में देखें।)

प्रश्न-37. 'ब्रह्म, ब्रह्मा, और ब्राह्मण ग्रन्थ' इत्यादि शब्दों में क्या अन्तर हैं ?

उत्तर : ब्रह्म : 'ब्रह्मन्' शब्द का उच्चारण ब्रह्म है। ब्रह्मन् शाश्वत, सर्वोच्च, सर्वसत्ता-सम्पन्न और परम तत्त्व है। सर्वव्यापक एवं सर्वोपरि परमेश्वर ही ब्रह्म है। ब्रह्म शब्द ईश्वर की व्याख्या करता है, जिसे हम सामान्य तौर पर परमात्मा कहते हैं।

ब्रह्मा : ब्रह्मा शब्द परमात्मा के 'निर्माता' स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। 'ब्रह्मा' को पौराणिक गाथाओं के रूप में प्रभु के कार्यों से सम्बधित कर 'त्रिदेव' का रूप दिया गया है। ये

त्रिदेव हैं–1. इस दुनिया को बनानेवाले ब्रह्मा, 2. पालन करने वाले विष्णु, 3. कल्याण एवं सृष्टि को नव्य रूप देने के लिए प्रलय-कार्य करनेवाले महेश। इन्हीं गुणों को धारण करने के कारण प्रभु को ब्रह्मा, विष्णु, व महेश कहा गया है। आलंकारिक रूप से ब्रह्मा को चार दिशाओं में चार मुख से दर्शाया गया है अर्थात् जो चारों वेदों का ज्ञाता है। जो व्यक्ति अग्निहोत्र का कार्य सुचारु रूप से अपनी देखरेख में पूर्ण करवाता है, उसको भी 'ब्रह्मा' कहते हैं। ब्रह्मा अग्निहोत्र का मूक संवाहक और प्रशासक होता है। ब्रह्मा अग्निहोत्र का आधिकारिक अध्यक्ष, पर्यवेक्षक और प्रबन्धक है।

ब्राह्मण : समाज को चार वर्गों में गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर विभाजित किया गया है। उनमें से एक वर्ग 'ब्राह्मण' वर्ण है। जैसा कि कानून-प्रदाता मनु महाराज ने वर्णन किया है, देखें उ० 35। **यह समाज का बौद्धिक वर्ग है जो कि मुख्य रूप से शिक्षा-क्षेत्र से सम्बन्धित गतिविधियों, ज्ञान-विज्ञान, तथा सांस्कारिक सेवाएँ प्रदान करता है।**

ब्राह्मण ग्रन्थ : वेदों की व्याख्या करने अथवा समझने में सहायक ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण-ग्रंथों का उपयोग होता है। प्रत्येक वेद की आध्यात्मिक ज्ञान की व्याख्या तथा समालोचना के लिए एक-एक ब्राह्मण ग्रंथ है। चूँकि ब्रह्म अथवा वैदिक मंत्रों को समझने हेतु इन ग्रंथों की आवश्यकता होती है, अतः इन्हें ब्राह्मण-ग्रंथ कहते हैं। ये ब्राह्मणों द्वारा बनाए हुए ग्रन्थ नहीं हैं, और न ही ये ब्राह्मणवाद फैलाते हैं, जैसा कि विदेशी लोगों ने समझा है। अध्याय 8 में 'हिन्दू धर्म की झलकियाँ' में भी देखें।

प्रश्न-38. हिन्दूइज्म का अर्थ क्या है ?

उत्तर : 'हिन्दूइज्म' शब्द एक अशुद्ध नामकरण है, जो कि अंग्रेजों द्वारा हिन्दू धर्म को बदनाम करने के लिए घड़ा गया था। बाद में लोगों की अज्ञानता से इस शब्द को और भी आगे बढ़ाया गया। इसका दूरस्थ मूल कारण और अभिप्राय हिन्दू धर्म को एक

'वाद', अथवा 'सम्प्रदाय' का तगमा/'लेबल' लगाना था, ताकि हिन्दू धर्म को 'हिन्दू धर्म' न मानकर उसे मानव-विरोधी घोषित कर, समूल नष्ट कर दिया जाए, और कोई भी हिन्दू धर्म पर विश्वास ही न करे। वास्तविकता यह है कि हिन्दू धर्म में 'वाद' का कोई स्थान नहीं है।

हिन्दू 'विश्व-बंधुत्व', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तों का पालन करता है, इसलिए हिन्दी कभी भी कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। 'वाद' शब्द एक ऐसी विचारधारा का प्रतीक है, जिसको किसी भी तरह दूसरों पर थोप सकें, उदाहरणार्थ– मार्क्सवाद, समाजवाद, कम्यूनिज्म, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद। लेकिन हिन्दुओं में कोई 'वाद' है ही नहीं।

हिन्दुओं के पास चार वेद और छः दर्शनशास्त्रों के साथ बहुतों से लौकिक और आध्यात्मिक विज्ञान की धर्म-पुस्तकें हैं, तो वाद कैसे हो सकता है? हिन्दू लोग असीम काल से क्रमबद्ध विकास की प्रक्रिया का अनुसरण करते रहे हैं, क्योंकि हिन्दू की परोक्ष विचारधारा नहीं है। इस प्रकार से हिन्दू धर्म में 'वाद' के लिए कोई स्थान नहीं है। हिन्दू लोकतंत्रात्मक है तथा प्रत्येक हिन्दू को किसी भी प्रकार का जीवनदर्शन अपनाने तथा मोक्ष के मार्ग ढूँढने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। हिन्दू धर्म कोई ऐसा संगठित धर्म नहीं है जिसके द्वारा हिन्दू विचारधारा को दूसरों पर बलपूर्वक थोपने का, धर्मान्तरण कराने का, धर्मान्तरण के लिए लालायित अथवा आकर्षित करने का ध्येय हो, जैसा कि अन्य मजहब वाले मुस्लिम और क्रिश्चियन लोग करते आ रहे हैं।

हिन्दुओं के धर्म का विशुद्ध नाम 'वैदिक सनातन धर्म' है।

प्रश्न-39. धर्म-संगत (Religious congregation) और धर्म-सभा (Audience) में क्या अंतर है ?

उत्तर : हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख परम्परागत रूप से एक ही शरीर के अंगों की भाँति हैं। इन्हें अगर 'ओम्कार कुटुम्ब

धर्म' की संज्ञा दे दी जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। ये 'ओम्कार कुटुम्ब धर्म' सभी समान रूप से धार्मिक क्रियाकलापों अथवा रीति-रिवाजों का आयोजन करते हैं। इनकी धर्म-सभाओं को सनातन धर्म सभा, जैन सभा, और शिरोमणि सभा इत्यादि कह सकते हैं। सभा का अर्थ है 'लोगों की उपस्थिति'। ये सभी 'ओम्कार धर्म' लोकतांत्रिक हैं और इनकी धर्म-सभा में जो लोग उपस्थित होते हैं, उनको पूरी तरह छूट होती है कि धर्म-सभाओं में जो भी कहा गया है उससे वे चाहें तो सहमत हों या नहीं, चाहें तो ग्रहण करें या नहीं, उनके ऊपर विचारों को थोपा नहीं जाता। इसी कारण से जो लोग उपस्थित होते हैं, उन्हें श्रोता तथा श्रोताओं से सम्बोधित करते हैं। श्रोताओं के समूह को सभा कहते हैं, और चूंकि इस सभा में धर्म पर विचार-विमर्श होता है, इसलिए धर्म-सभा कहा जाता है।

परन्तु 'मुस्लिम और क्रिश्चियन' की 'मज़हबी' और 'रिलिजियस' गोष्ठी में उपस्थित समूह में केवल एक ही रास्ते पर चर्चा होती है, तथा एक ही प्रकार की विचारधारा को पोषित किया जाता है, और इन्हीं विचारों को ही क्रियान्वित किया जाता है, इसलिए इस प्रकार के समूह को 'काँग्रीगेशन' (Religious congregation) कहते हैं। इनकी 'मीटिंग' को सभा नहीं कह सकते, इनमें विचार-विमर्श करने की स्वतन्त्रता भी नहीं होती, इसलिए उपस्थित लोगों को हम श्रोता भी नहीं कह सकते। उनके विचारों को माननेवाले लोगों को केवल कट्टरपंथी (blind followers or fanatics) ही कह सकेंगे।

धर्मसभा में उपस्थित लोगों के लिए उपयुक्त शब्द 'श्रोता' ही है। लोगों की धार्मिक बैठक में हिन्दू धर्म के अनुयायियों को सोचने-समझने की पूर्ण स्वतंत्रता है, किसी भी दर्शनशास्त्र को चुनकर विचार-विमर्श करने की स्वतंत्रता है।

प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू धर्म में 'सोच- विचार तथा समृद्धि हेतु

कार्य' करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। हिन्दुओं की धार्मिक बैठक के लिए 'धर्मसभा' शब्द ही समुचित है।

प्रश्न-40. क्या हिन्दू धर्म 'एक गठबंधित संगठन अथवा कट्टरपंथ' (Organized Religion) है, जैसे कि एक ही विचारधारा द्वारा पोषित इस्लाम और ईसाई मज़हब हैं ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की कोई केन्द्रीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मार्ग निर्देशन करनेवाली, 'एकमत-पोषित-विचारों वाली' कोई संस्था नहीं है। हिन्दुओं की उन्नति के लिए न उनके पास कोई संगठित समूह है, न उनके पास कोई संगठित योजना है, न उनके पास संगठित रूप से कोई कोष-धन अथवा सम्पत्ति है, जो केवल हिन्दुओं पर ही खर्च करें। तब हिन्दू कैसे एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) कहला सकता है?

दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दुओं का कोई संगठित समूह, कोई संगठित योजना, अथवा संगठित रूप से कोई कोष या धन भी नहीं है, जो मरे हुए हिन्दुओं को जलाने के लिए भी काम में ले सकें। ब्रिटिश समय में ब्रिटिश सरकार हिन्दू व्यापारियों को 'धर्मादा अर्थात् हिन्दुओं के लिए हिन्दू धर्म पर खर्च करने हेतु राशि' इकट्ठा करने देती थी, वह भी स्वतंत्र भारत की नेहरू सरकार ने बंद करवा दी। अभी भी स्वतंत्र भारत की राज्य तथा केन्द्रीय सरकारें बड़े-बड़े हिन्दुओं के मंदिरों में हिन्दुओं द्वारा चढ़ाई गई दान-राशि को अपने ही राज्य-कोष में हड़प जाती हैं, हिन्दू जनता मुँह ताकती रहती है। हिन्दू लोग 'हिन्दुओं के मंदिरों में हिन्दुओं द्वारा चढ़ाई गई दान-राशि को हिन्दुओं पर खर्च नहीं कर सकते' जैसे कि क्रिश्चियन लोगों की 'World Council of Churches based in Switzerland', तथा 'मुस्लिम मज़हब' वालों की जकातें खुल्ले रूप से करती हैं। कारण—हिन्दुओं का कोई संगठित समूह नहीं है, क्योंकि हिन्दू धर्म एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) नहीं है।

अमेरिका एक धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है। वहाँ अमेरिकी सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त संस्था 'United Way Agency' है, जो अमेरिकी सरकार की सहायता से सरकारी और निजी संस्थानों से हर वर्ष जोर-जबरदस्ती से प्रत्येक व्यक्ति के अर्द्ध-मासिक अथवा मासिक वेतन में से पूर्व-निर्धारित धन-राशि काटकर इस संस्था को सौंप देती है। यह राशि समाज-सेवा में रत निजी अथवा क्रिश्चियन चर्च द्वारा संचालित संस्थानों को वितरित कर दी जाती है। अमेरिका सरकार द्वारा एक और अर्द्ध-सरकारी संस्था है जिसका कार्य गरीब देशों में स्वयंसेवक भेजकर वहाँ सामाजिक कार्यों को बढ़ावा देना है। इसका नाम Peace Corps है। यह पूर्णतया चर्च के लोगों द्वारा संचालित होती है और समाज-सेवा के नाम पर धर्म-परिवर्तन करना इनका मुख्य कार्य होता है। आज तक इस संस्थान ने किसी भी हिन्दू, सिक्ख, जैन, अथवा बौद्ध धर्म के अनुयाइयों को सामाजिक कार्य करने के लिए 'Peace Corps worker' बनने की अनुमति नहीं दी। मैं स्वयं एक ऐसे प्रतिष्ठित सिख परिवार को जानता हूँ जिनके बच्चे अमेरिका में उत्पन्न, स्कूल में सर्वप्रथम, सभी अमेरिका के स्कूलों के खेल में अग्रिम Valedictorian विद्यार्थी को Peace Corps में स्वयंसेवक बनकर सामाजिक कार्यों में भाग लेने से मना कर दिया, क्योंकि वे सिक्ख हैं। इन उदाहरणों से आपको ज्ञात होगा कि गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) किस प्रकार से एक धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य सरकार द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य करते रहते हैं।

हिन्दुओं की कोई संगठित रूप से निर्देश करनेवाली संस्था भी नहीं है। हिन्दू धर्म की कोई नींव रखनेवाला भी नहीं है और न ही इसका कोई पीर पैगम्बर अथवा मसीहा है। हिन्दू धर्म में ऐसे बहुत-से ऋषि-मुनि-साधु-संतों, महान् वीर दिव्य पुरुषों, शिक्षकों एवं समयानुसार समाज-सुधारकों की लम्बी संख्या रही

है जिन्होंने अकेले हिन्दू धर्म के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता और विश्व की भलाई के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया। हिन्दू धर्म एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) नहीं है और हो भी नहीं सकता।

हिन्दू धर्म 'सत्य सनातन धर्म' को लोकतांत्रिक पद्धति के आधार पर वेदों की श्रेष्ठता दर्शानेवाला उदार धर्म है। हिन्दू धर्म ने न तो कभी जोर-जबरदस्ती से और न ही जिहाद की तरह क्रूर लड़ाइयों के द्वारा लोगों का बलपूर्वक वध करके धर्मान्तरण करने की कोशिश की। दूसरे कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों की तरह हिन्दू धर्म किसी को भी धर्म-परिवर्तन करने के लिए जोर नहीं देता।

क्या ही अच्छा हो अगर हिन्दू संगठित होकर सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं को पुनर्जीवित कर, देशबन्धुत्व-धर्मबन्धुत्व की भावना 'गैर हिन्दुओं' में प्रेरित कर सके, अराष्ट्रीय धर्मपरिवर्तन रोककर, अपने पिछड़े और बिछुड़े भाई-बहनों को गले लगाकर सक्रिय कर, उनमें आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास जागृत कर समाज और देश के प्रति प्रेम के बीज अंकुरित कर सके, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में केवल हिन्दू धर्म के कारण ही बहुत-सी वन्य पशु-पक्षियों की जातियाँ, मानव जन-जातियाँ और अनेक संस्कृतियाँ आज भी भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में सुरक्षित, विद्यमान एवं विकसित हैं। हिन्दू धर्म के संरक्षण द्वारा ही इन जन-जातियों ने अपने सांस्कृतिक रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाजों, सम्प्रदायों, वंशों, कुटुम्बों इत्यादि की अपनी परम्परा को बनाए रखा और आधुनिक समय में अधिक विकसित रूप लेकर स्वछन्दता से अपना अस्तित्व विश्व को दर्शाने में सफल हुए हैं।

अगर हिन्दू धर्म 'एक गठ-बंधित संगठन, कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों' की तरह होता तो दक्षिणी अमेरिका के 'इन्का', 'ऐजटेक' और 'माया' संस्कृतियाँ, अफ्रिका-मिश्र के फेरोज और

पिरामिड सभ्यता, आधुनिक हवाई द्वीपों की पोलिनिशयन संस्कृतियाँ, अमेरिकन रेड इण्डियन लोगों की धार्मिक गतिविधियों तथा संस्कृतियों की भाँति भारत की जन-जातियाँ और विविध संस्कृतियाँ हमेशा के लिए लुप्त हो जातीं।

हिन्दू धर्म की सहनशीलता तथा उदारता के कारण अनेक जन-जातियाँ और संस्कृतियाँ अक्षुण्ण सुरक्षित रही हैं। हिन्दू धर्म में लोकतांत्रिक खुलापन/सद्भाव हमेशा रहा है और अनन्त काल तक रहेगा।

प्रश्न-41. यदि हिन्दू धर्म, एक गठबंधित संगठन, कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों की तरह (Organized) नहीं है, तो हिन्दू पुरोहित अपनी आजीविका कैसे कमाते हैं और हिन्दुओं का अन्य मज़हबों के प्रति कैसा व्यवहार है ?

उत्तर : ईसाई पुजारी अथवा प्रीस्ट जिन्हें हम सामान्य भाषा में चेपलीन या मिनीस्टर और कैथोलिक लोगों में फादर कहते हैं, उन्हें वेतन चर्च देता है। वे चर्च के कर्मचारी होते हैं, उनकी पक्की नौकरी होती है। हिन्दू पुजारी अवैतनिक होकर दान पर ही निर्भर रहते हैं, जिसे दक्षिणा कहते हैं।

हिन्दू प्रत्येक मानव को बराबर की दृष्टि से देखते हैं और सबको परमात्मा की संतान मानते हैं। यजुर्वेद 11.5 में कहा गया है **'शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राः'** सभी परमात्मा की सन्तान हैं। इसलिए धार्मिक भेदभाव का हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है।

इस सन्दर्भ में हमें कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को भी ध्यान में रखना अति आवश्यक है—जब मिश्र से मोसेस ने ज्युइज अथवा यहूदी लोगों को स्वतंत्र कराया, तब कुछ ज्युइज अथवा यहूदी लोग तो साइनाइ नामक मिश्र के रेगिस्तान को पार कर इजराइल पहुँचे, परन्तु कुछ समुद्री मार्ग से भारत के दक्षिणी भाग केरल में शरण लेकर जा बसे। इसी तरह क्राइस्ट अथवा ईसा के अनुमानतः सात सौ वर्ष पश्चात् सीरिया में आतताई अरब मुसलमानों के

आक्रमणों से सीरियाई क्रिश्चियन बचकर, अपने देश को तिलांजलि देकर, समुद्री मार्ग से भारत के दक्षिणी भाग में आकर इन सीरियाई क्रिस्चियनों ने शरण ली। केरल में स्थापित प्राचीन सीरियाई क्रिश्चियन चर्च इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी लोग भी समुद्री मार्ग से ईरान में मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों से पीड़ित होकर, अपने देश ईरान को छोड़ भारत के पश्चिम घाट पर 'मुम्बई के इलाके' में शरण ली और भारतीय नागरिक की तरह रहने लगे।

नोट—यहूदी गैर-यहूदियों को जैनटाइल कहते हैं। यहूदी लोग हिब्रू शब्द 'गोईन' का प्रयोग उन गैर-यहूदी राष्ट्रों और यहूदियों के लिए करते हैं जिन्हें ईसाई लोगों ने ईसाई धर्म में बदल दिया। ईसाई लोग यहूदियों को 'हीदन' और गैर-यहूदी लोगों को 'पैगन' कहते हैं। इसी प्रकार इस्लाम मज़हब के माननेवाले मुसलमान लोग 'गैर मुसलमानों' को तिरस्कृत रूप से 'काफ़िर' कहते हैं। भूतकाल में मुसलमानों ने 'गैर-मुसलमान काफ़िर लोगों' पर 'जजिया नाम' से Tax/कर लगाया ताकि उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा सके। इस प्रथा का ज्वलंत उदाहरण है—आज के अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बंगलादेश।

इतिहास साक्षी है—*आजतक हिन्दुओं ने अन्य मज़हबों के लोगों को इस प्रकार से तिरस्कृत कर कोई अभद्र नाम नहीं दिया और न ही जबरदस्ती से किसी को भी धर्म-परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया।*

प्रश्न-42. विश्व में कौन-सी संस्कृति उच्चकोटि की और कौन सी निम्न कोटि की है और कौन-सा 'धर्म' 'सर्वधर्म समभाव' की झलक प्रस्तुत करता है ?

उत्तर : समाजशास्त्र के नियमानुसार एक सभ्यता की तुलना दूसरी सभ्यता के साथ नहीं की जा सकती (आई॰ रॉबर्टसन, समाजशास्त्र, 1987)। किसी भी एक संस्कृति अथवा सभ्यता को

न तो उच्च कोटि की कह सकते हैं और न ही दूसरी संस्कृति और सभ्यता को निम्न कोटि की।

'सर्वधर्म समभाव' का अर्थ–सभी 'धर्म' समान हैं। आइये देखे कौन-सा 'धर्म' समान है, उसकी परिभाषा क्या है? प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित धर्म को ही 'धर्म' कह सकते हैं। भारत-भूमि में उपजे 'हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख' इस परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, अन्य नहीं। ये 'धर्म' प्राकृतिक अथवा सनातन सिद्धान्तों, तथा आत्म-ज्ञान पर ही आधारित हैं। ये 'धर्म' प्रकृति को, जीव मात्र को, समूची मानवता को, सभी को समान रूप से देखते हैं, समरूपता लानेवाले हैं। इन धर्मों को किसी पर थोपने की आवश्यकता ही नहीं है, अतः केवल ये ही 'धर्म' कहलाने के अधिकारी हैं, अन्य नहीं। अन्धविश्वास से परे, योग तथा आत्मचिन्तन द्वारा ब्रह्म, ब्रह्माण्ड (प्रकृति) और स्वयं को पहचानने के ज्ञान, अथवा आत्मज्ञान, जो योग के माध्यम द्वारा सिद्ध किया जा सके, अर्थात् स्वयं द्वारा जाना जा सके (Self realization), वे ही धर्म कहलाते हैं। ये 'धर्म' भरपूर **आध्यात्मिक ज्ञान** के स्रोत हैं, जो जोर-जबरदस्ती से थोपे नहीं जा सकते। स्वयं की अनुभूति 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा इत्यादि के ज्ञान' का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में योग-साधना के द्वारा कर सकता है। आत्मज्ञान, ईश्वरीय ज्ञान के विषय में शंकाओं का समाधान तर्क-वितर्क से, विचारों के आदान-प्रदान से, न्याय की कसौटी पर कसकर, प्रमाण व लक्षणादि परीक्षाओं से, सत्यासत्य का निर्णय स्वयं करने की पूर्ण स्वतंत्रता केवल 'धर्म' वाले क्षेत्र में ही मिलती है।

भ्रांति-निराकरण : मान्यता पर आधारित 'मत', रिलिजन और 'मज़हब' में स्वतंत्र विचारों का आदान-प्रदान सर्वथा असम्भव है। ये सामान्य तौर पर 'मत' और 'मज़हब' कहलाते हैं, इनको 'धर्म' की संज्ञा देना भयंकर भूल है। ये 'धर्म' कहलाने के अधिकारी भी

नहीं हैं। रिलिजन जैसे क्रिश्चियन और मज़हब जैसे मुस्लिम, 'धर्म' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते, क्योंकि ये मनुष्यों द्वारा बनाए गए सिद्धान्तों पर आधारित हैं, कृत्रिम हैं। ये प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हैं, इसलिए असनातन हैं, 'धर्म' की श्रेणी में नहीं आते। 'ईसाई रिलिजन और इस्लामी मज़हब' केवल 'मत' (faith/belief based-dogmatic) अथवा विश्वास पर ही टिके हुए हैं, 'स्वयं' को पहचानने के ज्ञान/आत्मज्ञान से परे हैं। क्रिश्चियन लोग 'रिलिजन' का और मुस्लिम 'मज़हब' का ठप्पा लगाते हैं। ये केवल एक व्यक्ति की विचारधारा को ही मानते हैं, और एक प्रकार की विचारधारा को ही पोषित करते हैं। छल, कपट, और बल से दूसरों पर अपनी विचारधारा भी थोपते हैं तथा साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाकर बलात् धर्म-परिवर्तन भी कराते हैं। इनका सार्वभौम प्राकृतिक मानवीय सिद्धान्तों से, ब्रह्म-ब्रह्माण्ड से, आत्मज्ञान/आत्मतत्त्व और आत्मचिन्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है (देखें उ० नं० 2)। इन्हें 'मत, रिलिजन तथा मज़हब' नाम से ही सम्बोधित करना उपयुक्त है।

साधारणतया 'धर्म' का अभिप्राय हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख 'धर्म' से ही होता है। इनको 'ओम्कार धर्म' भी कह सकते हैं, जबकि क्रिश्चियन लोगों का 'रिलिजन', मुसलमानों का 'मज़हब' से ही सम्बोधित किया जाता है, ये केवल 'मत' की परिभाषा में ही आते हैं।

ओम्कार धर्म–*'हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख धर्म' ही प्राकृतिक सनातन सिद्धान्तों पर आधारित 'धर्म' हैं जो 'सर्वधर्म समभाव' के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से लागू कर समदृष्टि से देखते हैं। 'ओम्कार धर्म' ही मानवता को समान रूप से देखते हैं और समरूपता लानेवाले धर्म हैं। अन्य 'मत' क्रिश्चियन रिलिजन, तथा मुस्लिम मज़हब कहलाते हैं, उसमें ही वे अपनी महत्ता समझते हैं। ये 'मत' 'धर्म' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते, अत: 'सर्वधर्म*

समभाव' इन 'मतों–क्रिश्चियन रिलिजन तथा मुस्लिम मजहब पर लागू नहीं होता, कारण–ये धर्म नहीं, केवल 'मत' हैं।

प्रश्न-43. विश्व में कौन-से ऐसे मुख्य 'मत' हैं जो भारत में नहीं पाए जाते?

उत्तर : विश्व के सभी मुख्य 'मत' और 'धर्म' भारत में पाए जाते हैं। विश्व में फैले मत, रिलिजन जैसे क्रिश्चियन और यहूदी; मजहब जैसे मुस्लिम, जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी, इत्यादि सभी 'मत' भारत में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त विश्व की सभी सभ्यताओं की जननी भी भारत है। इन्हें भारत मातृवत् प्रेम करता है। सभी 'मत' और धर्मों की आध्यात्मिकता भारत से ही उत्पन्न हुई है। मैडम लुईस जैकोलियट ने इस विषय पर 'विश्व के सभी मतों की आध्यात्मिक उत्पत्ति की जननी भारत' पर बहुत खोज की और बहुत-सी पुस्तकें लिखीं। **1896 में प्रकाशित लुईस जैकोलियट की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'लॉ बाइबल डेन्स एल इण्डे' में जैकोलियट लिखती हैं– 'भारत विश्व का एक झूला (पालना) है। हाँ, वास्तव में ऐसा ही है। जहाँ से एक माँ अपने सारे बच्चों को अति दूर पश्चिम में भेजती है, जो हमारी उत्पत्ति की, भाषा की, मूल मर्यादा की परिचायक है। उसने अपने नैतिक नियमों, साहित्य, दर्शन तथा धर्म आदि धरोहर का हमें अनुपम उत्तराधिकारी बनाकर हमेशा के लिए सौंप दिया है।'**

वास्तव में विश्व का एक विशाल धर्म–झूला भारत है, जहाँ हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख धर्म; अनेकों 'मत'–जैसे क्रिश्चियन रिलिजन और यहूदी; मुस्लिम मजहब; जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी सभी भारत माँ की गोदी में फलते–फूलते हैं।

प्रश्न-44. विश्व में बहुत-से 'मत' और 'धर्म' हैं, पर उस एक धर्म का नाम बताएँ जिसमें 'जीवन कैसे जियें' प्रश्न का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण कर सही उत्तर दिया गया हो ?

उत्तर : वैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर हिन्दू धर्म की

शिक्षाएँ तथा मान्यताएँ हर समय खरी सिद्ध हुई हैं। अन्य 'मत' और मज़हब अन्धविश्वास, हठ-धर्मिता और चमत्कार की शिक्षाओं पर विश्वास करते हैं। केवल वैदिक-सनातन-धर्म ही वैज्ञानिक गतिविधियों के अस्तित्व को पूर्णतः स्वीकार करता है, कारण-हिन्दू धर्म स्वयं विज्ञान के आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। जीवन का आनन्द लेते हुए जीना और परमात्मा की सर्वत्र उपस्थिति और उसके अस्तित्व को समझना ही हिन्दू धर्म का आधार है।

परमात्मा का अनुभव एक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि 'परमात्मा की अनुभूति' एक वास्तविकता है। पातंजल अष्टांग-योग के द्वारा कोई भी व्यक्ति परमात्मा की निकटता के आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकता है। इस विषय पर वैदिक-सनातन-धर्म कहता है :

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। —यजुर्वेद 40.2

वेद का पृथिवी के सभी मनुष्यों के प्रति निर्देश है कि तुम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करो। बिना पुरुषार्थ के न तो जीवन चलता है, न ही मोक्ष प्राप्त होता है, अतः पुरुषार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। उत्तम नर/मनुष्य वह है जो पुरुषार्थ करता है, किन्तु उसमें लिप्त नहीं होता।

प्रश्न-45. जीव या जीवन का इस धरा पर क्या लक्ष्य है ?

उत्तर : वैदिक शास्त्रों ने जीव के लक्ष्य को एक वाक्य में सार-गर्भित कर दिया है—**'धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नरः'**। इसका अभिप्राय है—'धर्म अपनाते हुए अर्थ का उपार्जन करना' और उस 'अर्थ अथवा धन' से 'काम' अर्थात् कामनाएँ पूर्ण करना, तत्पश्चात् इन कामनाओं का अतिक्रमण कर मोक्ष प्राप्त करना। 'धर्म' का पालन करते हुए 'अर्थ' प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य है। धर्म का तात्पर्य है 'सही तरीके से' धन कमाना और शुद्धता के साथ सभी इच्छाओं को पूरी करना। अन्ततोगत्वा जो व्यक्ति इन सभी इच्छाओं का स्वामी होता है और अपने-आपको इन सभी

इच्छाओं की पकड़ से मुक्त रखता है, तो कहा जाएगा कि वह स्वयं का मालिक है, वही मस्त होकर जी सकता है और मोक्ष का आनन्द आत्मिक उन्नति से प्राप्त कर सकता है। पूर्ण इन्द्रिय-संयम के अभाव तथा अनासक्तभाव में घर-बार छोड़नेवालों की मुक्ति नहीं होती, परन्तु दुर्गति अवश्य होती है।

जब व्यक्ति की आत्मिक उन्नति होती है, तब आत्मा सर्वोच्च स्थिति में होने से परमशक्ति को प्राप्त करती है। यह आत्मा की अन्तिम स्थिति है जहाँ आकांक्षा या चाह नहीं होती। इच्छाओं से मुक्त होना ही मोक्ष कहा जाता है। अतः जीवन का लक्ष्य सब इच्छाओं से मुक्त होकर रहना है।

इच्छाओं से मुक्त होना ही जीवन का लक्ष्य है. परमात्म-प्राप्ति के परम आनन्द की उपलब्धि के लिए इस स्थिति का होना नितान्त आवश्यक है। सामान्यतया यह स्थिति मुक्ति के नाम से जानी जाती है, जिसे मोक्ष भी कहते हैं।

प्रश्न-46. परमात्मा धर्मपरायण और सदाचारी जीवन जीने में हमारी सहायता कैसे करते हैं ?

उत्तर : आलंकारिक रूप से भागवत पुराण में एक प्रतीक रूप में कहा गया है। इसके अनुसार परमात्मा अदृश्य है। अदृश्य प्रभु हमारा मित्र है, जो धर्मपरायण जीवन की ओर बढ़ने में हमारा मार्ग-निर्देशन करता है। हम जहाँ जाते हैं, वहीं वह अदृश्य मित्र 'परमात्मा' भी साथ जाता है। यह अदृश्य मित्र 'परमात्मा' हमें सदाचारी धर्म-परायण जीवन जीने में हमारा मार्ग-दर्शन करता है।

नोट : ऐतिहासिक प्रमाण पुराणों में वर्णित हैं। पुराणों का साहित्य जीवन के छिपे हुए भावों को प्रतीकात्मक रूप से बताता है। पुराणों के वृत्तान्त रूपात्मक हैं अर्थात् **सजीव चित्रण के साथ रोचक कथाओं का वर्णन है। इन्हें सार्वजनिक रूप से समझना आसान है। इसी मुख्य ध्येय को लेकर पुराणों की रचना की गई है।**

अतः इन लेखों के प्रतीकात्मक रूप को तात्त्विक रूप से अक्षरशः नहीं लेना चाहिए।

पुराणों का असली रूप और उद्देश्य तो विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों एवं ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय साहित्य के विकृत अनुवाद और विवेचनाओं के कारण दूषित हो गया है।

प्रश्न-47. हिन्दुओं का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शिष्टाचार क्या है ?

उत्तर : कोई भी व्यक्ति बूढ़ा हो या जवान, स्त्री हो या पुरुष, मित्र हो या अजनबी, गरीब हो या अमीर, नगरीय हो या ग्रामीण, सम्बन्धी हो या अपरिचित, अभिवादन में परस्पर एक-दूसरे के समक्ष हाथ जोड़ते हैं, तब धीरे से अपना सिर झुकाकर बड़े विनम्र भाव से 'नमस्ते' कहते हैं। हिन्दुओं का बहुत ही सामान्य शिष्टाचार 'नमस्ते' है और सबसे अधिक जरूरी शिष्टाचार भी 'नमस्ते' है।

व्यक्तिगत अथवा सामाजिक तौर पर एक व्यक्ति की श्रद्धापूर्ण या प्रेम व स्नेहपूर्ण भाव से अभिव्यक्ति 'नमस्ते' है।

प्रश्न-48. हिन्दुओं की बच्चों के बारे में क्या धारणा है ? बच्चों के साथ हिन्दू लोग किस तरह से व्यवहार करते हैं ?

उत्तर : यजुर्वेद (8.36) कहता है कि परमात्मा सबसे महान्, सर्वव्यापक और सभी को सब-कुछ देनेवाला है। इस प्रकार हिन्दू, बच्चों को परमात्मा की देन मानते हैं। बच्चों से बड़ी सावधानी एवं प्रेमपूर्वक बर्ताव किया जाता है। **यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा** (9.130) मनु ने भी इस सचाई को बढ़ाते हुए कहा है कि बच्चा, बेटा हो या बेटी, दोनों में एक ही आत्मा है, पुत्र और पुत्री को समान समझे। इस तरह से बाल-अपराध के लिए हिन्दू समाज में कोई स्थान नहीं है।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

—चाणक्य नीति 2.10

आचार्य चाणक्य कहते हैं कि जो माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते, वे अपने बच्चों के शत्रु हैं। विद्याहीन बालक-बालिका विद्वानों की सभा में वैसे ही शोभाहीन होते हैं जैसे हंसों के मध्य में बगुला। पातंजल महाभाष्य (8.18) ने भी बच्चों के अधिकारों को दृढ़ता प्रदान की है—माता- पिता बच्चों को विकसित वातावरण एवं शिक्षा प्रदान करें, क्योंकि दयालुता और मजबूती की आधारशिला शिक्षा ही है।

लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

—चाणक्य नीति 3.10

चाणक्य ने स्पष्ट कहा है—'पाँच वर्ष की आयु तक बच्चों का लालन-पालन लाड-प्यार, स्नेह से करें, दस वर्ष की आयु तक उन्हें उनके कर्तव्यों का अहसास अनुशासन से कराएँ, तथा 16 वर्ष की आयु होने पर बच्चों के साथ वयस्क (मित्र) की भाँति व्यवहार करना उत्तम है।'

अमेरिका के शिकागो यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक रिचर्ड ए॰ श्वुडर ने भारतीय बच्चों पर अध्ययन करने के उपरान्त 'साइँटिफिक

अमेरिकन' अगस्त 1999 में लिखा कि—'पढ़नेवाले भारतीय बच्चे अपने चाल-चलन और परिवेश के बारे में नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन ढालते हैं और जीवन जीते हैं। खोजबीन करने पर यह भी पाया कि **भारतीय जन-जीवन सापेक्षतावादी की भाँति जीवन आरम्भ करते हैं और सार्वभौमिक व्यक्ति की भाँति जीवन समाप्त करते हैं।** इस प्रकार से भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हमेशा बनाए रखते हैं। इसके विपरीत अमेरिकी वयस्क बदले हुए हालात के अनुसार अपने-आपको बदल लेते हैं।' अमेरिकी लोग समयानुसार मार्ग बदल लेते हैं।

उपर्युक्त तथ्य यह बताता है कि 'परोपकार, भलाई और सचाई' समाज को स्वस्थ रखने के लिए मूल आधार है। ये गुण ही मानवीय सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाए रखते हैं।

हिन्दू लोग बच्चों को परमात्मा की देन (उपहार) मानते हैं, इसलिए वे बच्चों के साथ बड़े प्यार, दुलार और समुचित देखभाल के साथ व्यवहार करते हैं।

प्रश्न-49. महिलाओं के प्रति हिन्दुओं की क्या धारणा है ?

उत्तर : आचार्य चाणक्य का कहना है :

मातृवत् परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

—चाणक्य नीति 12.13

'जो मनुष्य परस्त्री को माता के समान, पराए धन को मिट्टी के ढेले के समान और समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही ठीक-ठीक देखता है।' इसलिए हिन्दू-समाज नारियों को माँ अथवा बहन-बेटी के रूप में देखता है।

हिन्दू समाज में नारियाँ परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति का प्रतिनिधित्व मातृशक्ति के रूप में करती हैं, इसी कारण प्रभु के दिव्य गुणों को आलंकारिक ढंग से देवियों के रूप में दर्शाया है; (देवी तथा परमात्मा की परिभाषा के लिए प्रश्न-संख्या 86-87

देखें) उदाहरणार्थ—ज्ञान की देवी को सरस्वती, समृद्धि की देवी को लक्ष्मी कहा गया है। दैवीय संहारक शक्ति पार्वती के विभिन्न रूप भी इस प्रकार से हैं : अम्बिका, भवानी, चण्डी, दुर्गा, गिरिजा, काली, ललिता और मीनाक्षी। मनु कहते हैं:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

—मनु॰ 3.56

जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, लेकिन जहाँ घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता अर्थात् उनका तिरस्कार होता है, वहाँ सरी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

मनु ने (3.55) स्त्रियों के अधिकार को निश्चित करते हुए कहा है—'परिवार में माता-पिता अपनी लड़कियों को, पति-वर्ग अपनी पत्नियों को, घर के बाकी सब सदस्य अर्थात् देवर, बहनोई, साला, इत्यादि स्त्रियों को अत्यधिक मान-सम्मान दें।'

मनु के इसी ध्येय को लेकर मातृशक्ति को उचित सम्मान देते हुए हर हिन्दू-गाँव में एक देवी का मंदिर होता है; पर सार्वजनिक रूप से मान और सम्मान दिया जाना एक और बात है। स्वामी विवेकानन्द ने भारत-यात्रा के दौरान कन्याकुमारी में कन्याकुमारी की प्रतिमा के सम्मुख रोते हुए कहा था—'अगर हिन्दू समाज कन्याकुमारी की तरह अपने स्त्री-समाज की पूजा करता और अपने घर में स्त्री को सुसंस्कृत कर शिक्षित करता, तो बच्चे शिक्षित होते और निर्धनता व अज्ञानता का कोई स्थान न होता, हम गर्व से सिर उठाकर चलते। हिन्दुओं के लिए ऐसी गुलामी की स्थिति न आती।'

संसार-भर में केवल हिन्दू समाज की बहिनों के लिए रक्षा-बन्धन का पर्व मनाता है। इस पर्व पर सभी बहिनें बड़े प्रेम से अपने-अपने भाइयों की कलाइयों पर राखी बाँधती हैं।

सम्पूर्ण संसार का हिन्दू समाज अक्षय तृतीया, श्रावणी अथवा